चरित्र का चमत्कार

[चारित्रिक शिक्षाप्रद रोचक उपन्यास]

लेखक
व्याख्यान-वाचस्पति
श्री गणेश मुनि शास्त्री



प्रस्तावना
डॉ० नेमीचन्द जैन
सम्पादक—'तीर्थंकर'

प्रकाशन
अमर जैन साहित्य संस्थान
उदयपुर (राजस्थान)

☐ पुस्तक चरित्र का चमत्कार
☐ लेखक गणेश मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न
☐ सम्प्रेरक · जिनेन्द्र मुनि 'काव्यतीर्थ'
☐ प्रकाशक .
अमर जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर
☐ प्राप्ति-स्थल
हरीसिंह चौधरी
अमर जैन साहित्य संस्थान
गुलाबपुरा, जिला भीलवाडा (राजस्थान)
☐ प्रथम वार
वि० सं० २०३४
फरवरी १९७८
☐ मुद्रक :
श्रीचन्द सुराना के लिए
शैल प्रिन्टर्स, माईथान आगरा
☐ मूल्य :
तीन रुपया मात्र

प्रस्तुत पुस्तक के अर्थ सहयोगी



बा० ब्रह्म० कुमारी नयना बहिन की अहमदाबाद मे
दिनांक १२-२-७८ को जैन भागवती दीक्षा के उपलक्ष में
शा० धींगडमल जी मुलतानमल जी कानुगा, नयापुरा
मु० गढ़सिवाणा जि० बाड़मेर (राजस्थान)



प्रकाशक की ओर से

प्रसिद्ध साहित्यकार, व्याख्यान-वाचस्पति परम श्रद्धेय श्रीगणेश मुनिजी शास्त्री की विभिन्न साहित्यिक एव धार्मिक कृतियो से भारतवर्ष का पाठक-समुदाय सुपरिचित है। आपने सयम-साधना के साथ साहित्य के क्षेत्र मे जो प्रगति की है वह अद्वितोय है। कहानी, रूपक, उपन्यास, एकाकी, निवन्ध, गद्यगीत, तुलनात्मक शोध-प्रवन्ध, सगीत, मुक्तक आदि मे आपकी वहुत ही सुन्दर गति है। लगभग तीन दर्जन से अधिक आपके ग्रन्थ अव तक प्रकाश मे आ चुके हैं। कई ग्रन्थ साहित्य समीक्षको से सुन्दर से सुन्दर-तम समीक्षित हैं।

'चरित्र का चमत्कार' यह आपका एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। पौराणिक कथानक के आधार पर एक सती साध्वी की उज्ज्वल जीवन गाथा का आलेखन-विलेखन है। सती मदनरेखा के वाह्य एव आभ्यन्तरिक त्यागमय आदर्श जीवन को इस प्रकार आपने अपनी लेखनी-रत्न से उभारा है, जिसको पढते-पढते पाठक रोमाचित हो उठता है। जेष्ठ भ्राता राजा मणिरथ द्वारा छोटे भाई युगवाहु [मदनरेखा का पति] की निर्मम हत्या, सगर्भा की दशा मे

अकेली का वन-प्रस्थान करना, वन मे ही पुत्र-प्रसव, हाथी के द्वारा जल स्नान के समय उसका आकाश मे उछाली जाना, तथा रक्षक समझे जाने वाले विद्याधर द्वारा उसी के सतीत्व-अपहरण का प्रयत्न आदि अनेक प्रकार के कष्टो को, सघर्षो को झेलते हुए भी मदनरेखा ने अपने शील-सौन्दर्य को मटमैला नही होने दिया। सदाचार के जल से उसे निखारती रही, सँवारती रही। उसकी उज्ज्वलता की सदा सुरक्षा करती रही। आने वाली आपत्तियो से वह कभी भी भयातुर नही हुई, बल्कि आत्मबल से उन सबका प्रतिकार करती रही और अन्त मे एक दिन सभी प्रकार के कष्टो पर विजय प्राप्त कर अपने जीवन को सयम के महामार्ग पर लगा दिया।

पाश्चात्य विचारो मे पलने वाली तथा विलासिता के अतुल सागर मे अवगाहन करने वाली वर्तमान नारी के लिए सती मदनरेखा का त्यागमय जीवन एक प्रकाश-दीप है। उसके प्रकाश मे वह अपने भूले-भटके जीवन का सही मूल्याकन कर सत्चारित्र का अमृतपान कर सकेगी। इसी आशा विश्वास के साथ प्रस्तुत उपन्यास पाठको के कर-कमलो मे अर्पित करते हुए हम एक आनन्दानुभूति का अनुभव कर रहे हैं, और इस बात के लिए हम परम गौरव शाली भी है कि 'अमर जैन साहित्य सस्थान', उदयपुर मे उपन्यास जैसी सरल सुबोध व रोचकताप्रधान विधा को प्रकाश मे ला रहे है। इसके लिए हम श्रद्धेय वाचस्पति

जी म० सा० के पूर्ण आभारी रहेगे, जिन्होने हमे ऐसे सुन्दर प्रकाशन का स्वर्णिम अवसर प्रदान किया है।

स्नेहमूर्ति विद्वद्रत्न श्रीमान श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' को हम यहाँ अन्तर की गहराई से स्मरण करेगे, जिन्होने मुद्रण कला की दृष्टि से पुस्तक को सर्वांग रूप से सौन्दर्य प्रदान किया है।

प्रस्तुत प्रकाशन मे जिन उदारचेता दानदाताओ ने अपना महत्वपूर्ण अर्थ सहयोग प्रदान कर साहित्य के प्रति अपनी अभिरुचि दिखलाई है, हमारा सस्थान उनका पूर्ण आभारी है। भविष्य मे भी उनके द्वारा इसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा, ऐसी शुभाशा।

मन्त्री

—गिरधारीलाल छाजेड़

लेखक की कलम से

एक दिन मैं अपने निकट के साथियो के बीच बैठा हुआ था कि उन्होंने मुझे सुझाया—आपका साहित्य काफी लोक-प्रिय व समृद्ध होने जा रहा है, अत आपसे हमारा आग्रह है कि अब आप अन्यान्य विषयो की अपेक्षा प्राचीन कथा साहित्य की ओर ध्यान दे तो अति उत्तम रहेगा, और कथा साहित्य मे भी उपन्यास जैसी लोकप्रिय व सरल विधा की ओर लक्ष्य देकर लिखेंगे तो विशेष लाभ होगा। साथियो की बात मैंने सहर्ष स्वीकार की और उत्तर मे कहा—आपके इस मूल्यवान सुझाव के लिए मैं आपका आभारी हूँ, बहुत शीघ्र ही आपके इस सुझाव को साकार रूप देने का प्रयास करूँगा।

साथियो की बात मन-मस्तिष्क मे लम्बे समय तक घूमती-झूमती रही, जिसका कारण था समय और साधन का अभाव। बिना साधन के साध्य की प्राप्ति कैसे सम्भव हो सकती? साधन-सहयोग तथा समय की अनुकूलता होने पर ही तो किसी कार्य को सुन्दर रूप दिया जा सकता है।

पिछले वर्ष मेरा वर्षावास पाली (मारवाड़) था। वहाँ के विशाल जैन पुस्तकालय मे मैंने प्राचीन कथा साहित्य

की खोज अन्वेषणा की तो अनेको चरित्र निकल आये। उन चरित्रो मे 'सती मदनरेखा' मुझे अधिक आकर्षक लगा। प्रार्थना, प्रवचन, दर्शनार्थी बन्धुओ से वार्तालाप तथा दैनिक साधुचर्या के अतिरिक्त समय की बचत करते हुए मैंने सती मदनरेखा के जीवन चरित्र को 'चरित्र का चमत्कार' शीर्षक से उपन्यास शैली मे लिखना आरम्भ किया। धीरे-धीरे वर्षावास का समय सानन्द व्यतीत होता रहा और इधर मेरे उपन्यास का कार्य भी सुचारू रूप से सम्पन्न होता गया।

उपन्यास लिखे जाने के पश्चात् मन के एक कोने मे सन्देह समाहित हो गया और वह बार-बार मुझे इस ओर उद्वेलित करता रहा कि उपन्यास कैसा बन पडा है? और ऐसा होना स्वाभाविक भी था, क्योकि उपन्यास की दृष्टि से यह मेरा प्रथम चरण था। सन्देह निवारणार्थ कुछ विद्वानो को मैने दिखाया। विद्वानो ने पसन्द किया, और उनके आवश्यक सुझावो के अनुसार इसमे परिवर्तन-परिवर्धन भी किया। उपन्यास का मूल रूप प्रस्तुत है।

अब उपन्यास कैसा है? इस सम्बन्ध मे मैं स्वय कुछ कहना उपयुक्त नही समझता। मुझे तो इतना ही कहना है, और मैं इसी दृष्टि को लेकर चला हूँ कि उपन्यास मनोरजक भी रहे और इसके माध्यम से पाठको मे धार्मिक, अध्यात्म व सदाचार के भाव जागृत हो। क्योकि यह देव-दुर्लभ जीवन केवल मनोरजन के लिए ही तो प्राप्त नही हुआ

है ? इस मूल्यवान मनुष्यभव को प्राप्त कर आत्म-कल्याण भी साधना चाहिए। हाँ, तो पाठक स्वय ही अपना निर्णय दे कि उपन्यास उन्हे कैसा लगा। इससे मुझे प्रेरणा मिलेगी और मै नवीन साहित्य की सर्जना कर सकूँगा।

मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत उपन्यास प्रबुद्ध पाठको के मन को भायेगा और इसमे एक आदर्श सती नारी के त्याग मय जीवन से प्राप्त होने वाली सदाचार की पावन ज्योति से उनका मार्ग प्रशस्त होगा।

परम श्रद्धेय राजस्थान केशरी उपाध्याय पूज्य गुरुदेव श्रीपुष्कर मुनिजी म० सा० को मैं यहाँ श्रद्धायुक्त अनुस्मरण नमन करूँगा, जिनके शुभाशीश से मैं साहित्य के क्षेत्र मे निरन्तर गति-प्रगति करता जा रहा हूँ।

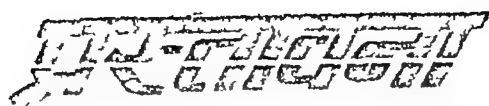
उपन्यास मे परिवर्तन-परिवर्धन तथा सशोधन आदि के कार्यो मे पत्रकार-स्नेहशील, उत्साही युवक श्रीमदनलाल जी लूकड तथा साहित्यकार श्रीज्ञानचन्द्र जी भारिल्ल जो एक कवि हैं, उपन्यासकार है, तथा प्रधानाध्यापक है। उक्त विद्वानो का मुझे सहयोग-सहकार प्राप्त हुआ है वह मेरे स्मृतिपथ पर सदा-सर्वदा चमकता-दमकता रहेगा, इसमे जरा भी सन्देह नही। साथ ही मै यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि उपन्यास मे कथासूत्र के सम्बन्ध को जोडने हेतु मैने कई अन्य लेखको की कृतियो का सहारा भी लिया है, तदर्थ उन सभी लेखको का आभार-प्रदर्शित करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

मेरे परम सहयोगी, सेवा-परायण, मधुरवक्ता—श्री जिनेन्द्र मुनि का समय-समय पर मुझे जो आवश्यक सुझाव तथा लेखन-प्रेरणा प्राप्त होती रही है वह सदा अविस्मरणीय है। प्रसिद्ध विद्वान डा० नेमीचन्द्रजी जैन इन्दौर, का स्नेह भी कभी भुलाया नही जा सकता, कारण मेरे प्रेम भरे आग्रह को सम्मान देकर पुस्तक पर विचारपूर्ण भूमिका लिखकर उसकी उपादेयता मे वृद्धि की है।

साहित्य प्रेमी श्रीयुत उमरावमलजी सचेती मदनगज, ने प्रस्तुत पुस्तक की पाण्डुलिपि को सुन्दर अक्षरो मे लिपि-बद्ध कर मेरे श्रम को हल्का किया, अत उनकी यह सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। मुद्रण कला की दृष्टि से पुस्तक को सुन्दर बनाने का श्रेय हमारे परमस्नेही श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' को है। नयनाभिराम गेट-अप आदि से अलकृत पॉकेट साइज मे यह कृति सर्वत्र समादर प्राप्त करेगी, यही मगल कामना।

महावीर जैन भवन
किशनगढ (राज०)
२१-१२-७७

—**गणेश मुनि शास्त्री**



श्री गणेश मुनि शास्त्री का नया लघु उपन्यास 'चरित्र का चमत्कार' एक परम्परा से हटकर प्रकाशित कृति है, एक ऐसी अभिनव कृति, जिसमे आत्मोन्नयन की सुवास है और लोक-जीवन को उदात्त जीवन-मूल्यो से जोडने का स्वस्तिकर प्रयत्न है। यह एक धार्मिक उपन्यास तो है ही, किन्तु मनुष्य की मौलिकताओ को पुन स्थापित करने का पुरुषार्थ भी इसमे प्रस्फुटित है। आत्मोत्थान प्रस्तुत कृति का प्रमुख लक्ष्य है और इसीलिए इसके सारे पात्र और सारी घटनाएँ उसी परिधि पर बडी सजगता से प्रदक्षिणा-न्त है। उपन्यास मे व्यक्ति और लोक-जीवन की उत्कृष्टताओ को आधार बनाया गया है और विभिन्न सामाजिक-सास्कृतिक रिश्तो को परिभाषित किया गया है। एक तरह से हम 'चरित्र के चमत्कार' को, टूटते रिश्तो के इस युग मे उनके सास्कृतिक स्थिरीकरण का उपन्यास कहेंगे, एक ऐसा उपन्यास जो 'देखन मे छोटा लगे घाव करे गम्भीर' है। इसमे राजा-प्रजा, पति-पत्नी, भाई-भाई, स्वामी-सेवक, मनुष्य-देव, श्रमण-श्रावक, इत्यादि सम्बन्धो के पुनर्चिन्तन के लिए अनेक रोचक और प्रभावक प्रसग उपन्यस्त किये गये हैं।

तीखी वासना मनुष्य को किस तरह पशु वना सकती है, किस तरह उसे सृजन के मार्ग से खीचकर ध्वस और विनाश के द्वार पर लाकर खडा कर सकती है, मणिरथ का चरित्र इसका ज्वलन्त-जीवन्त उदाहरण है। युगवाहु और मदनरेखा के व्यक्तित्व उदाहरणीय हैं। इन्ही पर श्रमण उपन्यासकार की स्याही सवमे अधिक खर्च हुई है। विद्वान मुनि ने आत्मसयम को जीवन-दीप का स्नेह सिद्ध किया है, और वताया है कि यदि हम आत्मानुशासित हो तो किस तरह हमारा सारा जीवन, उसका एक-एक कोना आलोक और दीप्ति से जगमगा सकता है।

मदनरेखा भारतीय नारी का अक्षरश प्रतिनिधित्व करती है और 'वीमेन-लिव' (नारी-मुक्ति) के कृत्रिम आन्दोलन के कर्दम मे कूदने से उसे रोकती है। माना, नारी को समानाधिकार दिये जाने चाहिए, किन्तु असयम और चरित्रहीनता के माध्यम से नही, आत्म-सयम और जीवन को उत्कृष्टताओ की राह चलकर। भारतीय नारी दुर्गा और लक्ष्मी, शौर्य और प्राचुर्य की प्रतिमूर्ति है क्या हम उसे इन दोनो महान् रूपो से रिक्त देखने की कोई कल्पना या प्रस्ताव कर सकते है ? मदनरेखा के माध्यम से प्रखर उपन्यासकार ने एक सार्वभौम नारी की मूर्ति घड़ने का सर्वोत्तम प्रयास किया है।

हेमन्त और मैना की अवान्तर कथा सामान्य नागरिक के सास्कृतिक जागरण की प्राणवान कथा है। जब कोई

सत्ता मदमत्त होती है, उस पर से सार्वजनिक अकुश हट जाता है (अकुश जो कही और से नही वरन् जन-जीवन मे मे आकर ही सत्ता के कुम्भस्थल पर लगता है) तब जिस क्रान्ति की प्रतीक्षा हम करना चाहते है, मुनि उपन्यासकार ने उसे इसी प्रसग के द्वारा सम्मूर्तित किया है। उसने हेमन्त और मैना के रूप मे नागरिको मे प्रजातान्त्रिक अभय और शौर्य को सक्रिय करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। कुशल कृतिकार की भावना है कि सामाजिको का, जो आज भी रूढि, अज्ञान, अन्धविश्वास, कायरता, और क्रूरता के विकृत वातावरण मे जी रहे है, एक नवसस्कार दिया जाये, उन्नत किया जाए। इसीलिए 'चरित्र को चमत्कार' नाम भले ही पारम्परिक है, किन्तु इसके तले जो भी सयोजित है, वह महत्वपूर्ण है और समाज के हृदय मे आत्मोत्थान की एक सुदृढ, स्वस्थ, सशक्त भावना को जन्म देने मे समर्थ है। एक स्वतन्त्रचेता धार्मिक को आकार देने के सामर्थ्य से उक्त उपन्यास पग-पग पर स्फूर्त-उत्साहित है।

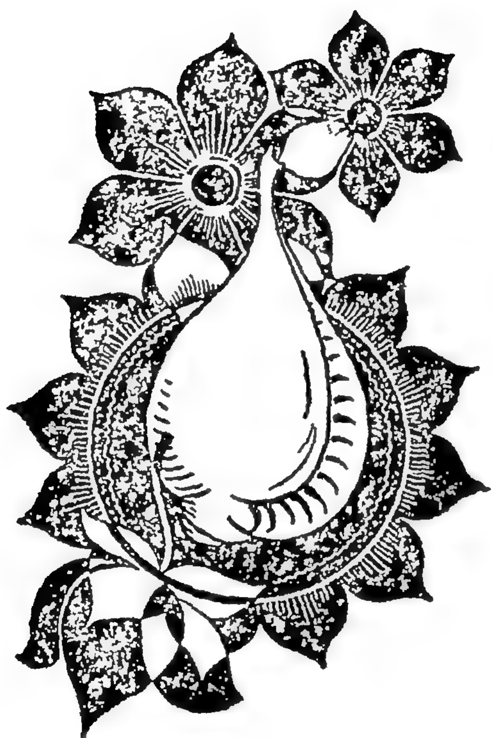
कहा जाना चाहिए कि श्रीगणेश मुनि शास्त्री मात्र एक साधक ही नही हैं वरन् बहुज्ञ है, और उन्हे मानव-जीवन के वैविध्य का गहन अनुभव है। नर-नारी-सम्बन्ध की स्वस्थ व्याख्या करने वाला, और जैनधर्म के मूलभूत सिद्धान्तो को कथा-शैली मे आकृत करने वाला यह उपन्यास न केवल पठनीय है अपितु अनुकरणीय भी है।

ऐसे उपन्यासो का व्यापक प्रचार-प्रसार इसलिए भी किया जाना चाहिए कि आज जो दूपित हवा है वह जासूसा उपन्यासो और कहानियो के पठन-पाठन को ही वढावा देती है, उकसाती है, किसी सास्कृतिक रुचि को उत्साहित करने की ताकत उसमे नही है। यही एकमात्र ऐसा कारण है (और वडा सशक्त है) जो अखिल मानव-समाज को मुनिश्री के प्रति कृतज्ञ बनाता है, जो जन-जन को ठीक वक्त पर ठीक राह दिखाने के लिए आगे आया है। हमे विश्वास है श्रीगणेश मुनि के इसी तरह के अन्य लघु उपन्यास भी प्रकाश मे आयेंगे और हमारी सभ्यता, सस्कृति, जीवन-शैली और विचार-प्रणाली को शुभ-मगल-मय मार्ग-दर्शन देगे। और हमे, हमारे चारो ओर लगातार गहरी होती जा रही, खाई मे गिरने से वचायेंगे।

इन्दौर,
५ फरवरी १९७८

—डा० नेमीचन्द जैन
सम्पादक 'तीर्थंकर'





चरित्र का चमत्कार

: एक :

अरुणोदय का समय था। मन्द-मन्द पवन के झकोरे सृष्टि को जीवन और जागृति का शुभ सन्देश दे रहे थे। पक्षियो का कलरव किसी महाकाव्य के रहस्य-गीत का उद्‌घोष करता-सा प्रतीत होता था। कमल-कोषो मे आबद्ध भ्रमर स्वप्न की भ्रान्ति से छूटने को आकुल-व्याकुल थे। तन्द्रिल नेत्र दिवस के सत्य को झेलने के लिए शनै-शनै खुल रहे थे। मन्द-मन्द झिलमिलाते तारे एक-एक कर सूर्य के सामने आत्म-समर्पण करते जा रहे थे। कही कमल वन हास्य बिखेरता हुआ मधु-नियन्त्रण की तैयारी कर रहा था, तो कही कुमुदिनी-समूह सकुचित हो रहा था।

सूर्य की सुनहरी रश्मियाँ यत्र-तत्र-सर्वत्र विकीर्ण हो चली थी। गगनचुम्बी भवनो की छतो पर सरलमना बालको का शोर स्पष्ट सुनाई दे रहा था, मानो पक्षियो के कलरव के साथ वह होड लगा रहा हो।

शैल-शिखरो से उच्च और धवल राजमहल भी जाग चुके थे। वहाँ हाथियो की चिंघाड और अश्वो की हिन-हिनाहट सुनाई पड़ रही थी। पशुशाला के राजकर्मचारी अपने प्रिय पशुओ की सेवा मे व्यस्त हो चुके थे।

राजमहल के एक गवाक्ष मे खड़ा राजकुमार चन्द्रयश

अपनी धाय माता प्रवीना का आँचल पकडकर वार-वार उसे झकझोर रहा था और जिद ठाने हुए था—

"धाय माँ, मेरी अच्छी धाय माँ ! मैं ननिहाल जाऊँगा। रानी माँ से आज्ञा लो।"

प्रवीना ने राजकुमार को समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु वालहठ और वह भी एक राजपुत्र की वालहठ के समक्ष उसकी एक न चली। विवश होकर अन्ततः उसे रानी मदनरेखा के आवास की ओर जाना ही पडा।

"स्वामिनी ! कुमार चन्द्रयश अपनी ननिहाल जाने के लिए हठ कर रहे है। वार-वार समझाने पर भी नही मानते। आपकी क्या आज्ञा है ?"

"प्रवीना, ! तुम राजकुमार की धाय माँ हो। उसे तुमने प्राणो से भी प्रिय मानकर पाला है। तुम्ही निर्णय करो कि वय। उसकी हठ स्वीकार की जानी चाहिए ?"

"स्वामिनी ! मेरा हृदय तो यही कहता है कि कुमार अभी वयस्क नही हुए है। इस वय मे उनका अपनी ननिहाल जाना उचित नही है।"

"ठीक कहती हो तुम प्रवीना ! राजधर्म कांटो की राह है। मित्र की अपेक्षा उसके शत्रु ही अधिक होते हैं। अभी कुमार ने ठीक से तलवार पकड़ना भी नही सीखा …।"

महारानी की वात अधूरी ही थी कि एक परिचारिका ने प्रवेश करते हुए सूचना दी—

"महाराज युगबाहु पधार रहे हैं।"

रानी को आश्चर्य हुआ, प्रवीना से बोली—"इतना आकस्मिक ? यह कैसे ? क्या कोई विशेष बात है, प्रवीना ?"

"राजाओ के मन की तरगो का क्या ठिकाना महारानी ! प्रभात दर्शन हेतु पधार रहे होगे। मैं द्वार खोले देती हूँ।"

"अभी ठहर ! तनिक ठहर !! क्या चमरधारिणी आ गई है ? महाराज के अभिवादन के सब उपक्रम तैयार हैं ? मैं भी तो कैसी अस्त-व्यस्त हूँ···।"

"महारानी ! आपका मुख तो प्रभात कमल जैसा खिला हुआ है। महाराज के नेत्र-भ्रमर सहज ही उसमें उलझ जायगे। इन काले केशो की घटाओ मे पूर्ण चन्द्र उतर आया है। आपको भला किसी शृंगार की क्या आवश्यकता ?"

"तू बडी चतुर और दुष्ट है प्रवीना ! मेरी एक नही चलने देती। अच्छा जा, महाराज को लिवा ला।"

महाराज युगबाहु अन्त पुर मे प्रविष्ट हुए। रानी ने उल्लसित होकर आगे बढते हुए स्वागत किया—

"आर्यपुत्र की जय हो। दासी जानना चाहती है कि सब कुशल तो है ?"

"प्राणप्रिये ! प्रजा मे सब कुशल है। सुदर्शनपुर के नीतिकुशल क्षत्रियोचित गुणसम्पन्न महाराज मणिरथ ने अपने इस अनुज पर बहुत भारी बोझ डालने का निर्णय

कर लिया है। वे मुझे युवराज पद प्रदान करना चाहते हैं। मानता हूँ कि उनका मेरे प्रति पुत्रवत् स्नेह है, मित्र के समान मेरे हिताहित की उन्हे चिन्ता है। स्वामी की भाँति वे मेरे रक्षक हैं, किन्तु युवराज पद ......"

"स्वामी ! आपकी चिन्ता व्यर्थ है। महाराज ने जो भी निर्णय किया है वह सोच-विचारकर ही किया होगा। आपके समान पति, चन्द्रयश के समान पुत्ररत्न—यह राज-वैभव—सभी कुछ तो उन्ही के आशीर्वाद का शुभ फल है। वे आपके अग्रज हैं और पिता तुल्य हैं। आप चिन्तित क्यो होते है ? उनकी आज्ञा का पालन करना आपका धर्म है।"

"यह तो ठीक है, और मुझे किसी भी प्रकार की चिन्ता भी नही है। किन्तु सोचता हूँ कि कही राज्य का लोभ मेरी मति को भ्रष्ट न कर दे। आज तक नि स्वार्थ भाव से मैं उनकी सेवा करता रहा हूँ। भविष्य मे भी यही चाहता हूँ। भय यही होता है कि सत्ता का मद मुझे कही अपने पथ से विचलित न कर दे। मात्र यही द्वन्द्व मेरे हृदय को आन्दोलित कर रहा है। इस धर्मसकट से बचने का कोई उपाय क्या तुम नही बता सकती ? अग्रज की आज्ञा का पालन और सत्ता के पद के आकर्पण से मुक्ति ·।"

"प्राणनाथ ! आप पद की अपेक्षा सेवा को अधिक महत्व देते हैं, यह जानकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सच्चा सेवक वही हो सकता है जिसके मन मे सत्ता और

पद के लिए रंचमात्र भी मोह न हो। महापुरुषो ने कहा है—इस पृथ्वी पर ऐसा कोई व्यक्ति आज तक नही जन्मा जिसमे पद पाकर मद नही आया हो। यह स्वाभाविक भी है। एक बात यह भी है कि ससार मे ऐसे कम लोग है जिनमें सत्ता का लोभ न हो, जो पद और सत्ता प्राप्त करने के लिए उचित-अनुचित कार्यों से बचते हो और यदि यह पद उनके अतिरिक्त किसी दूसरे को मिल जाय तो वे प्रसन्न हो। सत्ता प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अन्धा होकर नैतिक-अनैतिकता का भान भूल जाता है। आपने मुझे सहभागिनी होने का गौरव दिया है। एक स्त्री होने के नाते मैं कह सकती हूँ कि मेरे पति राजा हो और राजा वनकर अतुल ऐश्वर्य का भोग करे। मेरे पति का एक इशारा प्रजा के लिए जीवन और मृत्यु का प्रश्न बन जाय। जहाँ से हम (राजा-रानी) गुजरें कोई आँख उठाकर अपनी ओर देख न सके, सबकी गर्दन झुक जाय। सारी प्रजा हमारी कृपादृष्टि के लिए तरसती आँखो से हमे देखती रहे। किन्तु त्याग और वलिदान क्षात्र-धर्म है। त्यागहीन व्यक्ति इस धरती का सवसे बडा भिखारी है। मेरा अहो-भाग्य है कि आपके मन मे राज्य के प्रति लोभ के स्थान पर जनता-जनार्दन के प्रति समर्पण और सेवा भाव है। मैं युवराज्ञी या महारानी वनना नही चाहती। स्त्री पुरुष की मन्त्री है, सखा है, माँ है, सुख और समृद्धि की जननी है। मैं आपको वही राय देना चाहती हूँ जिसमे आपका

भला हो। मैं आपके कथन का पूरा-पूरा समर्थन करती हूँ, किन्तु साथ ही सचेत करना चाहती हूँ कि भाई की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य करने की सलाह मैं कभी नही दे सकती। हम लोगो को वही कार्य करना चाहिए जिससे अग्रज को सुख और प्रसन्नता मिले और जब आपके मन मे सेवा के भाव इतने दृढ है तो युवराज बनने पर भी आपको उससे कौन वचित कर सकता है ? इसलिए मेरी यही राय है कि लोभ से नहीं किन्तु बड़े भाई की आज्ञा का पालन कर उन्हे प्रसन्न करने के लिए आप युवराज पद स्वीकार कर ले। इसके साथ ही यह निवेदन भी कर देना चाहती हूँ कि युवराज-पद पाकर अपने मन मे किसी प्रकार का अहंकार न आने दें, भाई की सेवा करना न भूले और राज्योचित न्याय-नीति, प्रजावत्सलता आदि गुणो को न भूले। मुझे विश्वास है कि आप मेरी मन्त्रणा पर विचार करेंगे।"

"धन्य हो, तुम ठीक कहती हो। तुमने मुझे एक न्याय-मार्ग दिया है। मैं युवराज-पद स्वीकार करके भाई की इच्छा पूरी करूँगा। तुम्हारे इस विचार-दर्शन के लिए मेरा रोम-रोम आभारी है।"

भारी मन लेकर अन्त.पुर मे आये युगबाहु एक विवेक-शीला नारी की श्रेष्ठ सम्मति पाकर निश्चित हृदय लेकर दृढ कदमों से लौटे। द्वन्द्व के स्थान पर उनके हृदय मे अब दृढ, अटल विश्वास था।

□

: दो :

दीपक के तले अँधेरा होता है। फूलो की आकर्षक शय्या मे कण्टक छिपे होते हैं। आइए, देखे कि क्या प्रजा-वत्सल महाराज मणिरथ के राज्य मे भी कही अँधेरा था? काँटे थे? अन्याय था? और यदि ऐसा था, तो उसके लिए दोषी कौन था?

"मैना! जानती हो, कल महाराज मणिरथ अपने छोटे भाई युगबाहु को युवराज पद दे रहे है?"

"हेमन्त! यह सब जानती हूँ, किन्तु यह बताओ कि तुम मेरे महाराज कब बनोगे? बहुत दिनो से यह साध लिए जी रही हूँ कि मैं तुम्हारे दिल पर राज करूँ।"

"राज्य? कैसा राज्य मैना! हम गरीबो के पास धन कहाँ है? प्रजा कहाँ है?"

"दिल तो है हेमन्त!"

"अकेले दिल से क्या बनता है मैना! आदमी को जीने के लिए धन भी चाहिए।"

"और हमे धन की क्या कमी है—हमारा राजा तो बडा दयालु है। लोग कहते है, राजा मणिरथ अपनी प्रजा को सन्तान की तरह मानते है। सबके दु ख-सुख का ख्याल

रखते है। उनके रहते प्रजा पर कोई अत्याचार नही कर सकता। वे हमारे माँ-बाप है।"

"फिर भी राजा, राजा होता है मैना! उसकी निगाह कब पलट जाय, कोई नही जानता। राजा बड़े-बड़े सामन्तो और सेठो पर अधिक कृपा रखता है, हम छोटे आदमियो की परवाह कौन करता है?"

"ऐसा मत कहो हेमन्त, बडे-बडे सामन्त राजा को भेट देते हैं, राजकोष के लिए धनराशि एकत्र करते हैं, और हम! हम तो राजा का खजाना खाली करते हैं। है न हेमन्त?"

"तुम खाली करती होगी मैना! हम तो अपना खून-पसीना एक करते है, तब जाकर कही पेट भर रोटी नसीब होती है। ये बड़े-बडे लोग हमारे पसीने की कमाई से अपनी तिजोरियाँ भरते हैं, और उल्टे हमारे सामने ऐसी समस्याएँ खडी करते रहते है कि हम जिन्दगी भर उनके मोहताज बने रहे।"

"ऐसा फिर कभी मत कहना हेमन्त! अगर यह बात राजा के कानो तक चली गई तो वे तुम्हे राजद्रोही मानकर अपने राज्य से निकाल देगे। किसी भी हालत मे वे ऐसी बाते नही सुन सकते।"

"नही सुन सकते तो अपने कान बन्द कर ले, पर सच्चाई यही है मैना! राज्य की प्रजा के नाते हमारा भी

हक है, यह कहने का कि सेठ-साहूकार सिवा चालबाजी और फरेब के और कौन-सा व्यवहार गरीबो के साथ करते हैं। मेहनत करके टूट जाने वाले लोग कही रोटी के लिए मोहताज हैं, और कही तिल-भर शरीर न हिलाने-डुलाने वाले मोटे लोग विलासिता की जिन्दगी जी रहे हैं। क्या उनसे उपहार लेकर ही राजा अपनी प्रजा पर इतना अत्याचार होने देता है ?"

"वे हमारे मालिक है हेमन्त ! उनके गुण-दोप का पर्दाफाश करना हमारा धर्म नही। वे तो प्रजानाथ है।"

"यही तो हमारा भोलापन है मैना ! हम निरीह पशुओं की भाँति अत्याचार सहते रहते हैं और ऊपर से राजा को दुहाई देते है उनके नीति और न्याय की। मैना ! तुम्हें नही मालूम लाखो माँगों से जब सिन्दूर पुँछता है, लाखो बच्चे अनाथ होते हैं, हजारों घर जला दिये जाते हैं, अनगिनत अस्मते जब कुचल दी जाती है तब जाकर एक राजा के सिर पर ताज रखा जाता है।"

"यह समय इन बातो के लिए नही है हेमन्त ! इस समय हमे हँसी-खुशी मे शामिल होना चाहिए।"

"यही समय है मैना ! युगबाहु हमारे युवराज बन रहे है, कल वे हमारे राजा होगे, उन्हे हमारी मजबूरियो का पता होना चाहिए। ऐसा यदि नही हुआ तो हम उन्हे युवराज नही बनने देगे। हम दिन-रात उनकी सेवा करते

हैं, क्या हमारा शरीर ईंट-पत्थर से बना है ? क्या हमारे हृदय मे भावना नही है ? हमारे मुँह मे वाणी नही, हम कुछ भी नही कह सकते ? हम नकली न्याय के लिए राजा का गुणगान नही करेंगे ।"

"ओह हेमन्त ! तुम मेरी बात तो समझो। इधर-उधर गुप्तचर छोडे गये है । यदि किसी ने तुम्हारा यह मन्तव्य जान लिया कि कोई भी राजा अपनी प्रजा के लिए नही बल्कि अपनी वासना की आग बुझाने के लिए प्रजा पर, गरीबो पर, विधवाओ पर अत्याचार ढाता है, तो तुम्हें राजदण्ड मिलेगा ।"

"राजदण्ड का भय उन्हे होगा मैना, जो भेडो की तरह जीना चाहते हैं । हमारा जन्म दासता और गुलामी की हालत मे हुआ, हमने अत्याचार सहे, मेरी जवान बहन की लाज लूटकर राजा के सामन्तो ने उसकी हत्या कर दी । यह बात राजा के कानो तक पहुँची या नही, पता नही लेकिन कान खोलकर सुन लो हम दास और पीडित की अवस्था मे मरना नही चाहते । यदि सचमुच राजा अपनी प्रजा के लिए जीना चाहता है तो उसे राजा से पहले प्रजा का दास बनना पडेगा । जब तक सबको भरपेट रोटी, रहने को मकान और पहनने को कपडा न मिल जाय, वह अच्छे-अच्छे व्यजन, महल और राजसी वस्त्रो का उपयोग कभी न करे, वह रथ पर नही, नगे पाँव चले । यदि प्रजा की आँखो मे आँसू देखकर भी वह

विलास और ऐश्वर्य मे डूबा हुआ है तो वह राजा नही राक्षस है।"

"हेमन्त! समझ मे नही आता आज तुम्हे क्या हो गया है? आज तक तो तुमने कभी ऐसी बाते नही की। खुशी-खुशी तुम सारे काम करते रहे?"

"मैना तुम नारी हो। समझने की कोशिश करो कि हर समय ज्वालामुखी नही फूटा करता। लेकिन उसके मौन रहने का मतलब हरगिज यह नही हो सकता कि उसके सीने में आग नही जल रही है। आज ज्वालामुखी फूटने का समय है। यदि राजा मणिरथ या युगबाहु ने हमारी बातो पर ध्यान नही दिया तो हम विरोध करेंगे इस उत्सव का। चाहे हम शूली चढा दिये जायँ अथवा राज्य से निष्कासित कर दिये जायँ। न्याय के लिए मर जाना आदमी का धर्म होना चाहिए। वह आदमी ही क्या जो इन्सानियत को गिरवी रखकर लानत की जिन्दगी जीता रहे? मेरी बहन भी तो किसी राजा की पटरानी बन सकती थी। वह भी तो राज्य की सन्तान थी, क्या ये सारे गुप्तचर, ये सारे दण्डधारी उस समय सो गये थे? यदि राजा के यहाँ न्याय इतना मँहगा है तो मुझे भी मर जाने दो।"

"हेमन्त! तुम्हारे बिना मैं एक पल भी नही जी सकती। मैने तुम्हारे सिवा किसी भी पुरुष को अपना नही माना है। मेरे प्यार की कसम, तुम ऐसी बातो मे

मत पडो। आदमी का जीना-मरना तो कर्मों के आधीन है, तुम • •।"

"ठीक कहा मैना तुमने कि आदमी का जीना-मरना आदमी के हाथ मे नही, कर्मों के आधीन हैं। फिर तुम्ही वताओ आदमी का अत्याचार क्यो सहा जाय ? उसका डटकर मुकावला क्यों न किया जाय ? और यदि तुम सचमुच मुझसे प्यार करती हो तो तुम भी मेरे साथ मरने को तैयार हो जाओ। इस जन्म मे न सही अगले जन्म मे प्यार का तकाजा पूरा कर लेगे।"

"ठीक है हेमन्त, मैं तुम्हारे साथ मरने के लिए तैयार हूँ। सच्चा प्यार वलिदान के वाद ही निखरता है। एक वार मेरी माँग मे सिन्दूर भर दो फिर मुझे दुनियाँ में किसी का भय नही रहेगा। मौत का भी नही।"

"मैना ····आ······ ·।"

इस प्रकार दो प्रेमी सपनो का महल वना रहे थे। तभी वज्रपात हुआ—

"रुको !!! अपनी जगह से हिले तो तलवार से तुम्हारी गर्दन उडा दी जायगी। हाथ ऊपर उठा लो।"

किन्तु जैसे वज्र से वज्र टकराया हो। उत्तर आया—

"हेमन्त और मैना हिलने वाले वुजदिल इन्सान नही। उन्होने अपनी आत्मा को राजा के टुकडो पर वेच नही दिया है। वे कुत्ते और भेड़िये नही हैं। आओ हमारे पास,

तुम्हें राजा ने भेजा है न ? लेकिन तुम्हारे फैसले से हम सन्तुष्ट नही, इसलिए हाथ नहीं उठायेंगे, आत्मसमर्पण नही करेंगे। तुम हमारे शरीर को बेडियो मे जकड़ डालो पर हमारी आत्मा को कैसे बाँधोगे ?"

"हेमन्त ! बन्द करो बोलना। एक साधारण अनुचर राजाज्ञा को चुनौती देता है ? तुम्हारी खाल उधेड दी जायेगी चाम के कोड़ो से।"

"अनुचर से पहले मैं एक इन्सान हूँ, महासिंह ! जानता हूँ तुम एक सामन्त हो। लेकिन जिसकी आत्मा एक दास या सामन्त के दर्जे से ऊपर न उठ सकी वह क्या जान सकती है कि आजादी क्या चीज होती है। आज युगबाहु को युवराज बनाया जा रहा है न। तुम सब सामन्तो के आगे टुकड़े फेंके जायेंगे और तुम सब कौड़ी के मोल हीरा बेचकर खुश हो जाओगे। हा··हा· ।"

सामन्त महासिंह चौंका। उसने पूछा—

"यह कौडी और हीरा क्या चीज है हेमन्त ?"

"नही जानते महासिंह ! बात भी ठीक है, इतने चतुर होते तो कौड़ी के मोल हीरा देते ही क्यो ? तो सुनो हीरा तुम्हारी आजादी और कौड़ी गुलामी है, छोटे-मोटे सौंपे गये अधिकार, बस। चलो, राजदरबार अभी अभिवादन के लिए खड़ा होना होगा। देर मत करो।"

"तुम अजीब आदमी हो हेमन्त। राजा का तुम्हें जरा भी भय नही।"

"प्रत्येक सकल्पवान व्यक्ति लोगों के लिए अजीव होता है महासिह ! भगवान महावीर के कानो मे कीले ठोकी जाती रही और उन्होने चूँ तक नही किया। साँप डसता रहा और उनके अँगूठे से दूध निकलता रहा - क्या यह सव तुम्हे अजीब नही लगता ? तुम लोग ऐसे आदमी हो महासिह जो ऐसी बातो पर केवल आँखे फाड सकते हो पर कर कुछ नही सकते।"

"देखो हेमन्त ! महामात्य सहस्रबुद्धि आ रहे हैं। अवश्य राजा का कोई आदेश आया होगा। तुम्हारे.....।"

महामात्य ने आदेश दिया, "महाराज ने मैना और हेमन्त को वन्दीगृह मे रखने का आदेश दिया है। यदि ये चाहे तो अभी उत्सव मे सम्मिलित हो सकते हैं। बाद मे इन्हे वन्दीगृह ले जाया जायेगा।"

"हाँ, हम उत्सव मे सम्मिलित होने को तैयार है, हम अपने युवराज पर फूल वरसायेंगे। फिर हम राजा के न्याय की प्रतीक्षा करेंगे।"

"महासिह ! इनकी वेड़ियाँ खोल दो।"

□

: तीन :

महाराज मणिरथ की राज्यसभा मे उस क्षण सहसा स्तब्धता व्याप्त हो गई जब महाराज ने अपनी कमान जैसी भौहो मे बल डालते हुए प्रश्न किया—

"हेमन्त और मैना ! राज्य के गुप्तचर विभाग ने तुम दोनो पर आरोप लगाया है।"

नम्रतापूर्वक शीश झुकाते हुए हेमन्त ने कहा—

"वह आरोप क्या है, महाराज !"

"राजद्रोह।" गम्भीर ध्वनि मे महाराज बोले—"अब तुम उस अभियोग के विरुद्ध क्या कहना चाहते हो ?"

"महाराज, आपकी दृष्टि सूक्ष्मदर्शी है। सत्य की तह तक वह दृष्टि अवश्य पहुँचेगी, इस विश्वास के साथ यदि आज्ञा हो तो अपना निवेदन प्रस्तुत करूँ ?"—विनम्रता किन्तु पूर्ण दृढता के साथ हेमन्त ने कहा।

"हमारा सदैव यही प्रयत्न रहता है। निर्भय होकर उत्तर दो।"

"महाराज, अभियोग लगाने वालो की दृष्टि मे वह राजद्रोह हो सकता है, किन्तु हमारी दृष्टि मे वह आपके लिए अपने प्राण भी न्योछावर करने वाली आपकी प्रिय प्रजा की विनम्र फरियाद है।"

"हम सुनना चाहते है, तुम्हारी वह फरियाद।"

"महाराज! हम अपने राजा की न्यायप्रियता की बात कर रहे थे। हमारे मन में एक पीडा थी—हमारी बहन की हत्या का समाचार हमारे राजा के कानों तक नही पहुँच पाया। हम छोटे थे इसलिए हमारी जबान पर ताला लगा दिया गया? आखिर मेरी बहन का अपराध क्या था?"

"किसने की तुम्हारी बहन की हत्या?"

"महाराज के सर्वप्रिय नामक सामन्त ने।"

"महामात्य! इसे लिखित रूप दिया जाय और हेमन्त तुमने इसकी सूचना दरबार को क्यो नही दी?"

"महाराज! हमे सर्वप्रिय की ओर से धमकी दी गई थी कि यदि हमने इस घटना को कही प्रकट किया तो सारे परिवार पर राजमहल का भेद देने का अभियोग लगाकर शूली पर चढा दिया जायेगा।"

"तुम्हारी बहन की हत्या कैसे हुई?"

"महाराज! आप तो नीति विशारद है। हम गरीबों के पास था क्या? धनी की हत्या धन के लिए हो सकती है, राजा राज्य के लिए मारा जा सकता है और एक स्त्री? केवल अपने रूप के लिए। वह रूपवती थी। सामन्त सर्वप्रिय उसे अपनी रखैल बनाना चाहते थे किन्तु वह जब किसी प्रकार काबू मे नही आई तो सामन्त ने इसे अपना

अपमान समझकर तलवार से उसकी गर्दन उडा दी। अन्नदाता ! क्या हम गरीबो की कोई मान-मर्यादा नही ? क्या हमारी आबरू पर कोई भी आँख उठा सकता है ? न्याय चाहिए दीनानाथ ! यदि आपके राज्य मे केवल सामन्तो को ही जीने का अधिकार है तो राज्य के सारे मजदूर और गरीब इन्सानो को तलवार के घाट उतार दिया जाय और न्याय माँगने के लिए अगर मै दोषी हूँ तो मुझे राजदण्ड दिया जाय।"

"महामात्य ! सामन्त सर्वप्रिय को प्रस्तुत किया जाय।"

"सामन्त प्रस्तुत है महाराज !"

"सर्वप्रिय ! क्या हेमन्त की बाते सही है ?"

"महाराज ! हेमन्त बहुत बडा विद्रोही है। सारी प्रजा मे इसने राज्य के प्रति बगावत फैलाई है। लगता है दुश्मनो के आदमी इसकी सहायता करते है इस षड्यन्त्र मे।"

"षड्यन्त्र का इलाज दूसरा है सामन्त ! उसका सम्बन्ध राजा के बाहुबल और प्रजा के सहयोग से है। जो राजा प्रजा की दृष्टि मे राज्य करने योग्य नही, उसे प्रजा के कहने से पहले ही राजपाट छोड़कर सन्यासी हो जाना चाहिए। किन्तु अभी तो केवल एक सवाल पूछा गया है आपसे।"

"प्रजानाथ ! आपकी आँखों के सामने हर पल रहने वाले सर्वप्रिय पर क्या यह आरोप लगाया जा सकता है ?"

"प्रश्न का उत्तर प्रश्न मे नही सामन्त, उत्तर मे होना चाहिए।"

"महाराज ! मेरे और आपके बीच तनाव पैदा करने के लिए, राज्य का एक विरोधी खड़ा करने के लिए हेमन्त ने यह षड्यन्त्र रचा है। क्या एक दास-कन्या पर सामन्त का··?"

"अपने विरोध के भय से मैं न्याय का गला नही घोंट सकता सामन्त ! तुम जानते नही प्रजा मुझे प्राणो से भी प्यारी है। जिन्होने मेरे हाथों में अपना सर्वस्व सौप दिया है क्या मैं उन्हे उनका मानवोचित अधिकार भी नही दे सकता ? आपको इसमे सहयोग करना होगा और साफ-साफ वताना होगा कि क्या वास्तव मे यह अपराध आप ही के हाथो हुआ है ?"

"नही महाराज यह सव झूठ है।"

महाराज मणिरथ ने असमजस भरी एक दृष्टि हेमन्त की ओर फेंकते हुए प्रश्न किया—"क्या उत्तर देना चाहते हो तुम, हेमन्त ?"

हेमन्त कुछ कहे इससे पूर्व मैना आगे वढ़ आई। महाराज ने पूछा—

"तुम्हे क्या कहना है, मैना ?"

"कुछ निवेदन करना चाहती हूँ प्रजानाथ के चरणों मे। गणिका सुरेखा के प्रकोष्ठ मे सामन्त भद्रपाल की हत्या

करने वाले सामन्त सर्वप्रिय एक विलासी व्यक्ति हैं। तब तक इन्हें दरबार में सामन्त का पद नही मिला था। स्वयं मेरे ऊपर कई बार इनकी ललचाती निगाहें पडी। जब मैंने यह बताया कि हेमन्त से मैं प्यार करती हूँ, मेरी अरथी भी उसी के कन्धों पर निकलेगी। तब सामन्त ने जवाब दिया था, 'इसके पहले हेमन्त की अरथी तुम्हारे कन्धो पर उठेगी, मैं उसकी हत्या कर दूंगा। एक सामन्त की प्रेयसी पर दास आँख उठाये ?' मैंने सामन्त को जवाब दिया था–'फिर दोनो की अरथी आपके कन्धो पर उठेगी।' महाराज इसका भी प्रमाण प्रस्तुत किया जा सकता है। इसका प्रमाण है सामन्त सर्वप्रिय का सन्देश ले जाने वाली मगला।"

राजसभा में सन्नाटा छा गया। क्रोध मे भरे राजा गरज उठे—

"मगला को प्रस्तुत किया जाय।"

समीपस्थ कक्ष मे मगला महाराज द्वारा दिये जाने वाले न्याय को सुनने के लिए उत्सुकता के साथ कान लगाये खडी थी। आदेश सुनने ही वह वाहर आकर बोली—"मंगला प्रस्तुत है अन्नदाता।"

"मंगला ! मैना की बात कहाँ तक ठीक है ?"

"महाराज ! मैना की बात अक्षरश. सत्य है। आधी रात को सामन्त सर्वप्रिय ने मुझे यह कहकर उसके पास

भेजा था कि मेरा प्रस्ताव न स्वीकार करने का परिणाम यह हुआ कि हेमन्त की वहन मौत के घाट उतार दी गई। यदि मैना ने भी अस्वीकार किया तो उसे भी यही दिन देखना पड़ेगा।"

"सामन्त सर्वप्रिय क्या यह सब झूठ है?"

"बिल्कुल महाराज! मैं शुरू से ही कह रहा हूँ—यह सब हेमन्त की चाल है।"

"आपकी आवाज कह रही है सामन्त कि यह सब सच है। आप एक विलासी सामन्त है। सुरा और सुन्दरी के सिवा आपका अन्य कोई कार्य नही? क्या आप अन्धे हो गये है? वह मनुष्य जिसकी इन्द्रियाँ वश मे नही है वह मनुष्य नही जानवर है। वह कभी भी कुछ भी करने पर उतारू हो सकता है। इसलिए राजसभा मेरा न्याय सुने—

"मैना और हेमन्त को मुक्त किया जाय और सामन्त सर्वप्रिय को राज्य से निष्कासन।"

"प्रजावत्सल महाराज मणिरथ की जय। अन्नदाता महाराज मणिरथ की जय। युवराज युगबाहु की जय।"

यह जयघोष राजमहल से उठकर पूरे सुदर्शनपुर मे व्याप्त हो गया।

□

: चार :

राजा बड़ा या ऋषि ?

भारतीय सस्कृति का तनिक भी अवगाहन जिस व्यक्ति ने किया हो वह सहज ही उत्तर दे सकता है कि राजा से ऋषि बडा है। क्योंकि वह त्याग, तपस्या और साधना का जीवन अपनाता है, जबकि राजा ग्रहण, भोग और विलास का।

और इतिहास साक्षी है कि बड़े-बड़े ऋषि भी यदा-कदा कामिनी के कृपा-कटाक्षों के क्रीतदास बनकर अपने उच्च स्थान से भ्रष्ट होकर—पतन के गहरे गर्त मे जा गिरे है। तब अपने चारो और ऐश्वर्य प्रसाधनो से घिरे हुए राजाओ का स्खलित हो जाना तो सहज सम्भाव्य ही है।

राजा मणिरथ भी एक दिन अपनी समस्त धार्मिक-वृत्तियो के उपरान्त भी भाग्य चक्र के इसी आवर्त मे घिर कर तिनके की भाँति भटक गये।

उस दिन प्रकृति अपने पूर्ण यौवन पर थी। मन्द-मन्द पवन मन को झकझोरे डाल रहा था। लता-कुञ्जो मे पक्षियो का कलरव मधुर आमन्त्रण के समान सुखद और

सुहावना लग रहा था। पवन की सरसराहट में वीणा का नाद गुजारित हो रहा था और उसका एक भी स्पर्श अग-अग को रोमाचित किये देता था। समूची प्रकृति उन्मुक्त थी। पुष्प-पराग से बोझिल पवन गन्धमय बन गया था। लज्जा या सकोच मानो सृष्टि से निर्वासित कर दिये गये थे।

राजमहल के चारों ओर फूले-फले उद्यानों में भ्रमर गुजार कर रहे थे और तितलियाँ एक फूल से दूसरे फूल पर उडकर मानो कह रही थी—जिसने मधुपान न किया, उसका जीना क्या ? शाखायें एक-दूसरी को आलिंगन में लेने के लिए बढ रही थी।

मधुर मिलन की बेला थी। राजा मणिरथ अपने अनुचरो सहित वायु सेवन के लिए राजप्रासाद के ऊपरी भाग पर आये। सुगन्धि से भरे वातावरण ने राजा का अभिनन्दन किया। एक ही दृष्टि में सृष्टि का सारा सौंदर्य समाहित न हो सका। इसलिये राजा ने अगणित प्यासी निगाहो से प्रकृति को निहारा पर प्यास नही बुझ सकी। क्षणभर को मणिरथ ने अपनी आँखें बन्द कर ली और सारे रूपो को एक-एक कर याद करने लगे। रोम-रोम मे सिहरन भर गई। ऐमा लगा जैमे किसी ने कहा है—चुप रहो, किसी को इस प्रसंग का पता नही लगना चाहिये। यह अभिसार का पहला प्रसग है। राजा के होठ बन्द हो गये। अंगो मे आलस्य मिश्रित शिथिलता छा गई—प्रकृति

की लीला अपार है, वह बहुत बड़ी हतभागी है जो प्रकृति के साथ साहचर्य स्थापित नही कर सकी। उन्होने हवा मे कुछ पाने के लिये बाहे बढा दी। किन्तु कुछ भी हाथ न आने पर आश्चर्य से उनकी आँखे खुल गई—"क्या मैं स्वप्न मे हूँ ?" इतने में एक जीते-जागते स्वप्न पर उनकी निगाहे टिक गईं। उन्होने देखा—एक अनिन्द्य सुन्दरी प्रकृति के सारे सौदर्न्य को चुरा कर अपने वस्त्रो में छिपा रही है। उसकी हंसी फूलो की मुस्कान है। उसके स्वर मे कोयल कूकती है। उसकी चितवन मे बिजलियाँ कौधती है। उसके यौवन की छटा से भुवन मे प्रकाश फैल रहा है।

राजा मणिरथ अवाक् रह गये। उनकी पलके अचल हो गईं। वे मोचने लगे—क्या कोई आकाश-परी पृथ्वी पर उतर आई है ?

उस आकाश-परी के, वस्तुतः इस अद्भुत मानवी-सौन्दर्य दर्शन से राजा मणिरथ अपने समस्त जीवन का दर्शन भूल गये।

वे कहाँ हैं, कौन हैं, यह सब कुछ उन्हे विस्मृत हो गया। वे अनुभव कर रहे थे—पृथ्वी तेजी से घूम रही है, हृदय की धडकन क्रमश तेज होती जा रही है और एक अजीब मूर्च्छा उसे अपने मे लपेटती जा रही है। उसके पैरो के नीचे का सारा महल बहुत तेजी से काँप रहा है और ऐसी स्थिति मे पृथ्वी पर पाँव टिका पाना कठिन हो

गया है। उस सौन्दर्य-राशि से लगातार तीर चल रहे हैं, जो उसकी आँखों को पार कर हृदय मे असह्य चोट कर रहे है। वह जिस रूप को पकड़ना चाहता है वही हिरन हो जाता है। वह सम्मोहन की अवस्था मे घूमता रहता है। सुन्दरी के केशो से कुकुम झर रहा है, जब वह केश-राशि को इधर-उधर करती है उसका मुख मण्डल बादल का आवरण हट जाने के बाद सूर्य-सा मणिरथ की आँखों को चकाचौंध कर देता है। सखियाँ जब उसके शरीर मे विलेपन करती है तो मणिरथ के सारे शरीर में गुदगुदी भर जाती है। इतने मे एक सेवक ने धीरे से कहा—

"महाराज, वह युवराज का महल है। युवराज्ञी प्रासाद के ऊपर बैठी अपनी सखियो के साथ आमोद-प्रमोद कर रही हैं। इस समय अपने को स्वच्छन्द वातावरण में पाकर उनके अंगो से कही-कही पर्दा हट गया है। इस हालत मे देखना आपको शोभा नही देता। यदि उन्होने आपको अपनी ओर निहारते देख लिया तो ···?"

मणिरथ मौन रहा, वह तो उस सौन्दर्य सिन्धु मे डूबता जा रहा था। वह ऐसी अवस्था मे पहुँच चुका था जहाँ मनुष्य, सामाजिक या सासारिक मर्यादाओ को भूल जाता है। पुन. एक स्वर उसके कानों मे पडा—

"महाराज! आप मर्यादा-पालक हैं। परायी स्त्री को इस प्रकार ललचायी आँखो से देखना ठीक नही। यही नही, युवराज्ञी मदनरेखा आपकी अनुज-वधू है, आपकी

पुत्री के समान। उन्हे देखकर किसी प्रकार का विकार मन में लाना उचित नही। इसलिए आगत स्थिति से मुक्ति पाने के लिए महल से नीचे की ओर चले।"

"मैना! तुम पागल हो गयी हो। मैं अनुज-वधू को नही देख रहा हूँ। मेरी आँखो मे एक नारी का सौन्दर्य समाया हुआ है। मेरी शिराओ मे पुरुष का रक्त प्रवाहित हो रहा है। वह नारी का साहचर्य चाहता है। धिक्कार है तुम लोगो को कि इतना निष्कलुष सौन्दर्य तुम लोगो ने मेरी आँखो से छिपाये रखा।"

"महाराज! आप क्या कह रहे हैं?"

"ठीक कह रहा हूँ मैना! तुमने ही एक दिन कहा था—राजा के मन की गहराई की कोई थाह नही। उसकी सीमा नही। जाने कब किस पर वह मोहित हो जाय। उसके लिए प्रत्येक नारी प्राप्य है। इसे पाने मे तुम्हे मेरी सहायता करनी होगी।"

.... सुनकर मैना मानो आकाश से भूमि पर कुछ देर के लिए गिर पडी। बोली—"किन्तु महाराज, मर्यादा भी कोई चीज होती है। मदनरेखा आपके राज-परिवार की बहू है, अभी आपने उन्हे युवराज्ञी पद से सुशोभित किया है। अग्नि के सामने समाज ने उन्हे युवराज युगबाहु के लिए भेट किया है। क्या दूसरे के अधिकार पर आप हावी होना चाहते हैं?"

"मैना ! अधिकार मैंने दिया है, जव चाहूँ उस अधिकार को अपने हाथो मे ले सकता हूँ। क्या पृथ्वीपति एक सुन्दरी का पति नही वन सकता ?"

"वह कोई साधारण सुन्दरी नही महाराज ! सारा साम्राज्य जानता है कि युवराज्ञी मदनरेखा एक ऐसी सुन्दरी है जिसे पाप का एक भी धब्बा नही छू पाया है। उसकी दृष्टि मे संसार के सारे पुरुष, सिवा युगवाहु के, पिता-भाई है। वह पतिव्रता है। उसी के पुण्यो का फल है कि आपने उसके पति को युवराज पद दिया है। और फिर दूसरी वात यह है कि आप युवराज को प्राणो से भी अधिक मानते हैं। क्या उनकी कोई अतिप्रिय वस्तु छीनकर आप खुश होगे ?"

"यह सारा राज्य युवराज का है मैना ! इसे उसके हाथो मे सौपकर सन्यास ले लेने मे भी मुझे तनिक भी देर नही लग सकती, किन्तु इस सारे राज्य के वदले मुझे मदनरेखा चाहिए। वह मेरे लिए सजीवनी है, यदि वह नही मिल सकी तो मैं अपने प्राण त्याग दूंगा।"

"समझी म ाराज ! राजा का लोभ वहुत वड़ा होता है। वह राज्य के सारे कानून छोटे और गरीव लोगो के लिए वनाता है जिन्हे कानून का वन्धन तोडते ही मौत का शिकार वन जाना पडता है। समर्थ और शक्तिशाली लोग तो पग-पग पर कानून की अवहेलना करते हैं। वे जो कुछ भी कर जाते है वही कानून और मर्यादा वन

जाता है। वे रक्षक होकर भी भक्षक बन जाते है। जब उनका मन किसी पराई नारी पर चल जाता है तो कहा जाता है—राजा बड़ा रसिक है। जब राजा दूसरो की सम्पत्ति लूटकर उन्हे गुलाम बना लेता है तो उसके पराक्रम की प्रशसा की जाती है।"

वासना से अन्धे बने मणिरथ क्रोध मे भरकर गरजे—

"मैना ! तुम क्या कह रही हो ! तुम एक दासी हो। तुम्हे वही करना पडेगा जो राजा को प्रिय हो। राजा की इच्छा के विरुद्ध एक शब्द भी कहने का तुम्हे अधिकार नही।"

"महाराज, स्वामी के हिताहित का ध्यान रखना भृत्य का धर्म है। वह राजा क्या जो भृत्यो की हितकारी बातो को ध्यान से न सुने और वह भृत्य क्या जो राजा को हितकारी बाते न बताये। दोनो के एक-दूसरे की हितकारी बाते मानने पर ही राज्य मे सारी ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ निवास कर सकती है। महाराज मैंने आपका नमक खाया है। आपके हित की बात कह रही हूँ। आप नीतिज्ञ हैं, राजसभा में बड़े-बडे कूटनीतिज्ञो की बाते सुनते हैं। आपको मालूम है—दुनिया के सारे संघर्ष स्त्री, लक्ष्मी और पृथ्वी को लेकर होते है। तीनो नारी-वाचक हैं, बिना सघर्ष के तीनों पर विजय पाना कठिन है। स्पष्ट है कि मदनरेखा को पाने के लिए युवराज युगबाहु से आपको संघर्ष करना पडेगा। युवराज एक क्षत्रिय कुमार हैं, पराक्रमशाली

और बुद्धिमान् है। क्या इस पारस्परिक संघर्ष मे राज्य छिन्न-भिन्न नही हो जायगा ?"

"मैना ! भय और लज्जा नारी का आभूषण है। वह छोटे-छोटे कारणो की आशका से डर जाती है किन्तु पुरुष का जन्म ही रणभूमि मे वलिदान होने के लिए होता है। फिर भी मैं युद्ध और संघर्ष द्वारा नही वल्कि कूटनीति द्वारा मदनरेखा को अपनी बनाना चाहता हूँ। तुम्हे मालूम है—एक नारी दूसरी नारी की कमजोरियो को भली-भाँति जानती है। नारी द्वारा ही इस काम मे सफलता मिल सकती है। वोलो, इसके लिए तुम्हे कितनी धनराशि चाहिए ?"

"आप ठीक कहते है महाराज ! मै आपकी बात से असहमत नही हूँ। कही-कही छल, माया, फरेब, प्रपच, झूठ सव एक साथ सिमटकर नारी के रूप मे प्रकट होते है। धरती का कोई भी शिकार नारी के अस्त्र से बच नही सकता। जो नारी के कटाक्ष से वच गया वह पृथ्वी का ही नही स्वर्ग का भी राजा हो सकता है। नारी इसी लिए उत्पन्न हुई है कि वह पुरुष की वुद्धि की स्वामिनी वनी रहे और उसके संकेत पर दुनिया मे विनाश और निर्माण के नाटक खेले जायँ।"

खोये-खोये-से राजा मणिरथ वहके-वहके कदमों से धीरे-धीरे नीचे उतर आये।

□

: पाँच :

"महाराज ! आज आप इतने खिन्न क्यो दिखाई दे रहे है ?" प्रासाद-कोष्ठ पर जाने से पहले तो आपका मुख-मण्डल कमल की भाँति खिला हुआ था। क्या एकाएक कोई अशुभ समाचार आ गया ?"—रानी मजुला ने राजा मणिरथ को उदासी मे डूबा देखकर पूछा।

"मजुला ! इस उदासी का कारण मैं भी नही समझ सका। जाने कहाँ से भीतर ही भीतर एक भाव आया और सारी खुशी छीनकर भाग गया। चाहता हूँ उसको पकड़-कर उससे अपने भाव ले लूँ, किन्तु वह कही भी दिखाई नही देता। ठीक भी है जो तीर हाथ से छूट गया, वह वापस लौटकर कहाँ आता है ? ठीक वैसी ही गति हृदय की है, एक बार जिसकी ओर चला गया, फिर लौट नही आया। मेरी आँखो के सामने पलाश झरकर धरती पर गिरता हुआ-सा लग रहा है मजुला ! क्या मैं स्वप्न तो नही देख रहा हूँ ?"

"जरूर कोई स्वप्न आपको उदास बना रहा है प्राण-नाथ ! आप प्रजापति है, ऋद्धियो के स्वामी है, क्या इतने पर भी आप किसी वस्तु का सपना देख रहे है ?"

"मजुला इतना भाग्यवान् कोई भी व्यक्ति इस पृथ्वी पर उत्पन्न नही हुआ जिसके पास सव कुछ हो। वहुत-सी ऐसी चीजे हैं जो प्रजा के लिए सहज रीति से सुलभ है किन्तु उन्ही के लिए राजमहल मे राजा तड़प रहा है। राजा फकीर होने के लिए तडप रहा है और फकीर राजा होने के लिए दर-दर भटक रहा है।"

"महाराज! इस सुहावने वातावरण में जवकि प्रकृति अपनी मोहिनी माया से सवको ठग रही है, किसी का मन फकीरी की ओर जाना स्वाभाविक नही लगता।"

"क्या स्वाभाविक है और क्या अस्वाभाविक है, यह एक वहुत वडी पहेली है, मजुला!"

"प्राणनाथ! कामिनी के कटाक्ष से कोई पुरुष वच जाय माना नही जा सकता। लगता है आपके नेत्र किसी की ओर खिच गये है। किसी सुन्दरी की मूर्ति पुरुष की आँखो मे तैरे, क्या यह रहस्य नारी से छिप सकता है? कौन है वह सौभाग्यशालिनी स्त्री जिस पर हमारे स्वामी अपना मन लुटा बैठे हैं।"

"मजुला! ऐसी कोई वात नही है। शकालु होना नारियो का स्वाभाविक गुण है। वे हर समय अपने पति पर शका किया करती हैं कि उनका पति किसी दूसरी नारी के मोहपाश मे बँध गया है। क्या तुम्हारे सौन्दर्य की समता करने वाला कोई दूसरा सौन्दर्य है इस पृथ्वी पर?"

"मानलूँ कि यह सच भी है तो भी दिन-रात पकवान और व्यजनो का भोग करते-करते मन कभी-कभी कडवी कसैली चीजो पर भी चल जाता है। आदमी हमेशा स्वाद परिवर्तन चाहता है। एक-रसता से मन का ऊब जाना स्वाभाविक है और मैं कोई अनिद्य सुन्दरी नही। स्त्री जब तक पुरुष की आँखो मे चढी रहे चाहे वह कुरूप हो फिर भी रूपवती लगती है किन्तु आँखो से उतर जाने के बाद चाहे जितनी रूपवती हो कुरूप लगती है। मन की गति वक्र है प्राणनाथ ! फिर एक सच्चाई को कैसे झुठला दूँ।"

"मजुला ! ऐसा कदापि नही हो सकता। नारी-नारी से ईर्ष्या करती है, वह नही चाहती कि पृथ्वी पर उसके अतिरिक्त कोई सुन्दरी और नवयौवना जन्म ले किन्तु विधि के विधान को कौन वदल सकता है ?"

"महाराज ! आप कोई रहस्य मुझसे छिपा रहे हैं। मानती हूँ कोई नारी यह नही चाहती कि उसके सुख को और स्त्री छीन ले, किन्तु सच्ची स्त्री तो वही है जो अपने पति के प्रिय-अप्रिय का ध्यान रखे। कुछ भी हो यदि किसी दूसरी सुन्दरी के रूप पर आप आसक्त हो गये है तो आपके रास्ते मे मैं काँटा बनकर नही फूल वनकर ही आऊँगी। आपकी प्रसन्नता के लिए अपने प्राण भी दे सकती हूँ। नारी की गरिमा इसी मे है कि वह पुरुष के लिए वलिदान हो जाय और पुरुष का कर्तव्य है कि उस बलिदान का मोल एकनिष्ठता और प्रेम से चुकाये, किन्तु

मैं प्रतिदान की अपेक्षा नही करती। आप खुशी-खुशी उसे अपनी पटरानी बनाकर लाइये, मै दासी का कर्तव्य निभाने के लिए तैयार हूँ।"

"मंजुला ! इन सारी बातो से यही प्रकट होता है कि तुम मुझ पर सन्देह करती हो। मुझे भी खेद है कि पति-पत्नी के प्रेम का प्रतिफल कोई सन्तान, मैं तुम्हें नही दे पाया, किन्तु वह तो नियति की लीला है। अपना वश ही क्या है ? कर्म की गति गहन है मंजुले ! तुम्हारे प्रेम और सौन्दर्य दोनो से मैं तृप्त हूँ। तुम्हारे शशिमुख को देखकर मैं अपनी सारी क्लान्ति भूल जाता हूँ। पल भर को लगता है जैसे आँखो से छलकती स्नेह की मदिरा सारी थकान उतार रही हो और गुलाबी अधरो का अमृत मृत्यु से बचा रहा हो। तुम्हारी स्निग्ध भुजाओ के बन्धन मे मै सारा राजपाट भूल जाता हूँ और भाग्य को धन्यवाद देता हूँ, उसकी ऐसी अनुकम्पा के लिए कि मजुला जैसे नारी रत्न को उसने मुझ भिखारी को देकर निहाल कर दिया।"

"महाराज ! मैं इसे अपना सौभाग्य समझती हूँ। आप मुझे सन्तान नही दे सके या मैं आपसे सन्तान न पा सकी, इन दो बातो मे किसको सच मानूं ? इन दोनो को छोड़कर आपका स्नेह बना रहे, यही दासी की इच्छा है। आपने मुझे धूल मे से उठाकर मस्तक पर चढा लिया, यह आपकी उदारता है। साथ ही यह समय की लीला भी तो है। हो सकता है आपसे प्रेम करने वाली कोई

अन्य सुन्दरी मुझसे हर बात मे बढी-चढी हो। ऐसी स्थिति मे मैं आपको एक लाभ से कैसे वचित होने दे सकती हूँ।"

"छोड़ो इन बातों को मजुला, इनसे बनना क्या है ? यह समय नीरस बातो मे बिताने का नही है। आओ प्रकृति को देखें—कितनी रगीन दिखाई दे रही है ? लगता है सारी मादकता एक ही बार ढाल देगी। तुम यह क्यो नही पूछती कि भौंरे क्यो मँडरा रहे है, कलियाँ हवा के एक ही झोके से क्यो चटख रही है, अशोक के फूलो से इतनी मादक गन्ध क्यो आ रही है, मौलश्री के फूलो से इतने पराग क्यो झड रहे हैं, सारा वातावरण इन्द्रधनुष की तरह क्यो सतरगी हो गया है, तुम अपना अचल लहराकर क्यो नही प्रकृति के सारे प्रश्नो का उत्तर दे देती ? क्या तुम्हारे अधरों को जडता समाप्त नही हो रही है ? मुस्कराओ मजुला ! देखो, हसो का जोडा उड़ता हुआ तुम्हारी ओर आ रहा है।"

"किन्तु मै अकेले उन्हे नही पकड सकती प्राणनाथ ! आप उदास रहें और मै मुस्कराऊँ यह बात कैसे हो सकती है। आपकी अर्द्धांगिनी हूँ आपके हँसने पर ही हँस सकती हूँ ? आपने मुझे जो गौरव दिया है क्या उसे यो ही लुट जाने दूँ ?"

"वह मेरे जीतेजी कभी नही लुट सकता मजुला ! तुम विश्वास रखो, मणिरथ की भुजाओ मे जब तक शक्ति

है कोई शक्ति हम दोनों को अलग नही कर सकती। मैं उस चट्टान को खण्ड-खण्ड कर दूंगा जो हमारे बीच सिर उठाने का प्रयास करेगी।"

"महाराज ! अपने कानो पर भरोसा कर पाना कठिन लग रहा है। यदि ऐसा होता तो क्या प्राणनाथ की बाहे इस दासी के लिए उठ नही जाती ? पर· · ·।"

"मंजुला ! मै तुम्हारी आँखों मे आँसू देखना नही चाहता। तुम विश्वास करो, मणिरथ का हृदय ऐसा नही जो जब चाहे मोडा जा सके। एक बार जिसे पटरानी का पद दे दिया वही पटरानी रहेगी, दासी नही हो सकती। राज्य मे अनेक चिन्ताएँ होती है मंजुला ! कही प्रजा का दुःख, कही शत्रु का भय। सोच रहा था इस सुहावने समय का आनन्द क्या उन लोगो को भी उतना ही प्रसन्न करता होगा जो रोटी के टुकडो के लिए, नगे शरीर को ढँकने के लिए हाथ भर कपड़े के लिए मोहताज है। मंजुला ! जिस राजा के राज्य मे प्रजा अभाव मे जीवन बिता रही हो क्या उसे कोई भी अवसर सुख दे सकता है ? मेरे पास राजमहल है, दास-दासियां हैं, तुम हो, किन्तु जो इन सबसे रहित हैं, उनकी क्या हालत होगी ? मंजुला ! सोचो तो सही क्या ये सब मिलकर मेरी उदासी के कारण नही बन सकते ?

□

: छह :

मणिरथ मदनरेखा पर इतना आसक्त हो गया कि उसका प्रिय भाई युगबाहु भी उसे काँटे की तरह लगने लगा और दिन-रात वह इसी चिन्ता मे रहने लगा कि इस काँटे को कैसे दूर किया जाय। उसके मन में बार-बार एक बात कौध जाती थी कि—"युगबाहु के रहते यदि मैंने मदनरेखा को प्राप्त करने का प्रयत्न किया और युगबाहु को इस बात का पता लग गया तो वह मेरे विरुद्ध हो जायगा। अब वह केवल मेरा छोटा भाई ही नही अपितु युवराज भी है। यदि उसने विद्रोह किया तो प्रजा भी उसी का साथ देगी और मदनरेखा भी प्राप्त नही होगी तथा मुझे निन्दा का पात्र बनना पडेगा।"

मणिरथ एक षड्यन्त्र की तैयारी मे सलग्न हो गया। महामात्य, सामन्तगण और युवराज को बुलाकर उसने कहा, "राज्य की सीमा पर निष्कासित सामन्त सर्वप्रिय ने उत्पात मचा रखा है। वह प्रजा को नाना प्रकार के दु.ख देता है और घोषणा करता है कि 'वे सर्वप्रिय को अपना राजा माने। मणिरथ एक अन्यायी राजा है और अपने अन्यायी भ्राता को उसने युवराज भी बना दिया है।' मुझे चिन्ता है, इन बातो को सुनकर प्रजा के मन मे

कौन-कौन से भाव उत्पन्न होगे। इस समय मेरे कर्तव्य और पौरुष की परीक्षा की घड़ी उपस्थित हुई है—जो राजा प्रजा पर अत्याचार करने वाले आततायियो का दमन नही करता वह कायर है, उसे राजा का पद छोड देना चाहिए। महामात्य सहस्रबुद्धि, आपकी क्या राय है ?"

"महाराज, आप प्रजावत्सल हैं। प्रजा पर दिन-रात हो रहे अन्याय को आप कैसे सहन कर सकते हैं ?"

"महामात्य ! सेना को तैयार कराओ। जब तक मणिरथ के हाथो मे तलवार है, कोई भी अत्याचारी प्रजा पर अत्याचार नही कर सकता। मैं क्षत्रिय हूँ। अपने वीर और पराक्रमी पूर्वजो का रक्त मेरी शिराओ मे बह रहा है। मैं माँ के दूध को लजाना नही चाहता। मैं उन अत्याचारियो का दमन कर उन्हे अपने अधीन करूँगा और जो सिर उठाने की कोशिश करेगे उनका सिर धड़ से अलग कर दिया जायेगा। कल मैं विजय-प्रयाण करूँगा। मेरी अनुपस्थिति मे युवराज युगबाहु और महामात्य सहस्रबुद्धि राज्य का सारा कार्य सँभालेगे। यह निर्णय सेना को सुना दिया जाय।"

"महाराज मणिरथ की जय हो। आपने वीरोचित बात कही है। आपके रहते किसी की क्या शक्ति है जो प्रजा का अहित कर सके। जहाँ आपका पसीना गिरेगा

वहाँ हम अपना रक्त बहाने को तैयार हैं। सँभालो भाइयो अपनी-अपनी तलवारे। हम सामन्त है, राज्य की रक्षा का भार हम पर भी है। हम महाराज मणिरथ के साथ प्रयाण करेगे—सामन्तो ने कहा।"

"साधुवाद सामन्तगण ! आपसे मुझे यही आशा थी। आप प्रजा के सच्चे रक्षक हैं, आप सब क्षत्रिय है और निर्बलो की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म है। आपके सहयोग से हमे विजय-लक्ष्मी अवश्य मिलेगी।"

उसी समय युगबाहु आया और उसने कहा—"सामन्तो ! आपने अपने कर्तव्यनिष्ठ होने का प्रमाण दिया। मेरी भी सुनिये—महाराज की चिन्ता हम सबकी चिन्ता है। वे स्वय रणक्षेत्र मे जाने को तैयार है। यह उनका धर्म है किन्तु उसके पहले एक धर्म मेरा भी है। मेरे रहते बड़े भाई युद्धक्षेत्र मे जायँ यह मेरे लिए शोभा नही देता। बड़े भाई का आशीर्वाद लेकर शत्रुओ का दमन करने मैं जाऊँगा। मैं क्षात्रधर्म को कलकित नही करना चाहता। भविष्य मे राज्य का भार मेरे कन्धो पर आने वाला है। उसे निष्कटक बनाना मेरा धर्म है।"

"युगबाहु ! तुम मुझे प्राणो से भी अधिक प्रिय हो। युद्धक्षेत्र मे तुम्हे' ' यदि कुछ हो गया तो मैं प्रजा को मुंह दिखाने लायक नही रहूँगा। इसके अलावा तुम अभी बच्चे हो, युद्ध-नीति का तुम्हारा ज्ञान अधूरा है। बर्बर शत्रुओ को तुम कैसे जीत पाओगे ? तुम यदि युद्ध-क्षेत्र मे

चले भी गये तो तुम्हारी चिन्ता हमारे प्राण ले लेगी। मुझे युद्ध मे होने वाले कष्टों से ज्यादा कष्ट यहाँ पर होगा। इसलिए तुम नादानी मत करो, मेरी वात मानकर घर पर ही रहो। मेरे वाद तो तुम्हे रणभूमि मे उतरना ही है।"

"महाराज ! क्या आपको मेरी शक्ति और वीरता पर कुछ सन्देह है ? क्या मैं कायर हूँ ? यदि ऐसा है तो मैं आपका छोटा भाई होने के योग्य नही और यदि आपको मेरे भुजवल और युद्ध-कौशल पर भरोसा नही था तो यह युवराज पद देकर मुझे क्यो लाछित किया ? यदि आपने मुझे रण-भूमि मे अपना पराक्रम दिखाने का अवसर नही दिया तो प्रजा मुझे कायर और अनाडी समझेगी और प्रजा का विश्वास खोकर क्या मैं निष्कटक होकर राज्य कर सकता हूँ ?"

"वत्स युगवाहु ! तुम्हारी वीरता मे मुझे कोई सन्देह नही। यह भी भली-भाँति जानता हूँ कि तुम एक स्वाभिमानी क्षत्रिय हो। तुम्हारी भुजाओ मे पृथ्वी को कँपा देने की शक्ति है। तुम मौत से जूझ सकते हो। सर्वप्रिय क्या उस जैसे अनेक योद्धा भी तुम्हारा वाल-वाँका नही कर सकते किन्तु प्रेम मुझे वलिदान के लिए पुकार रहा है। युवराज, एक ओर तुम्हारा आग्रह और दूसरी ओर तुम्हारे प्रति अटूट प्रेम दोनो ने मुझे असमजस मे डाल

दिया है। मैं क्या करूँ ? अपने मुँह से तुम्हे युद्ध मे जाने की आज्ञा कैसे दूँ ?"

"महाराज, आप बन्धु-मोह को छोडिये। यहाँ कर्तव्य का प्रश्न है। क्या अपने मोह के कारण मुझे अपने मार्ग से डिगाना चाहते हैं ? आप मुझे कितना चाहते है, बहुत अच्छी तरह जानता हूँ, किन्तु आपका अनन्य प्रेम हमारे कर्तव्य-मार्ग मे वाधक नही होना चाहिए। आप मुझे रोकिये मत। विश्वास कीजिए मैं युद्ध मे विजय प्राप्त करके शीघ्र ही लौट आऊँगा। आपके पद-चिह्नो पर अनन्य श्रद्धा के साथ चलना मेरा कुलधर्म और राजधर्म भी है। महाराज ! मेरी याचना को ठुकराइए मत।"

"युगबाहु तुम युद्ध मे विजयी होकर आओ। यही तुम्हारे सहोदर की शुभकामना है। तुम्हारा यश चहुँ दिशाओ मे फैले, तुम क्षत्रिय कुल का गौरव वढाओ, जाओ सेना तुम्हारी भरपूर सहायता करेगी। आओ एक वार तुम्हे छाती से लगा लूँ युगबाहु।"

"महाराज……।!!"

भाई को विदा देकर मणिरथ महल की ओर चला गया। उसे मन-ही-मन षड्यन्त्र की सफलता और अपनी चतुराई पर गर्व हुआ। उसने सोचा—साँप भी मर गया और लाठी भी वच गई। वह अपने सभासदो से कहने लगा—"युगबाहु वीर है इसलिए युद्ध मे गये विना

नही रह सकता किन्तु उसका वियोग मैं कैसे सहन करूँगा ? वास्तव मे राजधर्म अति कठिन है। अपने धर्म को निभाने के लिए राजा को न जाने क्या-क्या कष्ट सहन करने पडते हैं। युगवाहु राजधर्म से प्रेरित होकर ही युद्ध मे जाने के लिए तैयार हुआ है। मैं उसे रोकूँ भी तो कैसे ? जिस धर्म का पालन करने के लिए युगवाहु जा रहा है वही उसकी रक्षा करेगा। यद्यपि मेरा हृदय नही मानता किन्तु दूसरा मार्ग भी तो नही है। अच्छा सामन्तो सुनो, तुम्हे युवराज का पूरा-पूरा ध्यान रखना है।"

"राजा मणिरथ की जय ! युगवाहु की जय !!"

जुआरी द्वारा दाव जीतने की-सी प्रसन्नता मणिरथ को हो रही थी। उसके हृदय मे अगणित भावनाएँ हिलोरे ले रही थी—"अव मेरे मार्ग का काँटा निकल जायेगा और मैं मनमोहिनी मदनरेखा को थोड़े ही समय मे अपनी प्रेयसी वना लूंगा।"

राजा अपने मन के लड्डू फोड रहा था, किन्तु वह नही जानता था कि कोमलागी मदनरेखा अपने सतीत्व की रक्षा के लिए 'अगनरेखा' भी वन सकती है।

□

: सात :

युगवाहु वीर था, विवेकवान था, वन्धुवत्सल और सरल था। उसे कल्पना भी नही थी कि मणिरथ के हृदय में कोई सर्प रेंग रहा है। उसका रोम-रोम मणिरथ का कृतज्ञ हो रहा था—"महाराज कितने दयालु है। उन्होने मुझे युद्ध मे पराक्रम दिखाने का अवसर प्रदान किया है। सवसे वडी वात है उनका सहोदर-प्रेम ! वे जीते-जी मुझे अपनी आँखो से ओझल नही होने देना चाहते। मैं कितना भाग्यवान हूँ। यह सन्देश मदनरेखा को सुनाना चाहिए। वह सुनकर वहुत प्रसन्न होगी। वह मेरी अर्द्धांगिनी है। इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक कार्य मे उसकी राय लूँ और उसके सहमत हो जाने पर ही किसी काम को आरम्भ करूँ।"

प्रसन्नमन युगवाहु मदनरेखा के महल में आया। प्रिय पति का आगमन जानकर प्रेयसी पत्नी वहुत प्रसन्न हुई। आनन्दित होती हुई उसने पति का स्वागत करके उन्हे सिंहासन पर विठाया और कुशल समाचार पूछने के पश्चात् कहा—"नाथ ! आज आप सदा से अधिक प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं। जान पड़ता है किसी नई खुशी का समाचार कही से मिला है। भूलियेगा नही मैं आपकी

अर्द्धांगिनी हूँ, इसलिए आपको जो कुछ मिला है उसमें हिस्सा बँटाने का अधिकार मुझे भी है। अत. अपनी खुशी का आधा हिस्सा मुझे दे दीजिए।"

"बस आधा ही ? प्राणप्रिये ! यह सारी खुशी तुम्हारी है। तुम्हारे ही कारण यह मुझे मिली है। फिर अपने पास इसे रखने का मुझे क्या अधिकार है ? आओ तुम्हारी अमानत तुम्हे ही लौटा दे।"

युगवाहु ने मदनरेखा को स्नेह भरे शब्दो मे सहलाते हुए कुछ कहा और हृदय-स्पर्श से अपनी सारी खुशियाँ मदनरेखा पर न्यौछावर कर दी—जिसकी वह अधिकारिणी थी।

"प्राणनाथ ! खुशी का कारण नही वताया आपने।"

"प्रिये ! आज राजसभा मे महाराज ने सेना तैयार करने की आज्ञा दी और स्वय सीमा पर उपद्रव करने वाले अत्याचारियो का दमन करने के लिए जाने को तैयार हुए। उस समय मेरे मन मे विचार आया कि क्या मेरे रहते वडे भाई युद्ध-भूमि मे जायेगे ? इस प्रकार के विचारो से प्रेरित होकर मैंने आततायियो के दमन का भार अपने ऊपर ले लिया है। यद्यपि महाराज ने मुझे वन्धु-स्नेह के कारण वहुत रोका किन्तु मेरे आग्रह के सामने उनको मौन होना पडा और उन्हें आज्ञा देनी ही पड़ी। मैं युद्ध करने के लिए जा रहा हूँ। इसी वात से मैं

प्रसन्न हूँ कि मुझे अपना पराक्रम दिखाकर क्षत्रिय-धर्म का पालन करने और बड़े भाई की सेवा करने का सुअवसर मिला है। मदनरेखा ! यदि सच कहूँ तो क्षत्रियो के लिए केवल दो ही मार्ग होने चाहिए—शत्रुओ को अधीन करना, उनको पराजित करना या युद्ध-भूमि मे लडते-लड़ते वीर-गति को प्राप्त करना।"

यह कहते-कहते युगवाहु गद्गद हो उठा। उसके कथन पर मदनरेखा ने कहा—"प्रियतम ! अपने ऊपर युद्ध का भार लेकर आपने श्रेष्ठ कार्य किया है। मैं क्षत्रिय-कन्या एव वीर-पत्नी हूं, इसलिए यह समाचार सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। आप खुशी-खुशी युद्ध के लिए प्रयाण कीजिए। मैं प्रसन्नतापूर्वक युद्ध-सज्जा से आपको सजाऊंगी और मगल-तिलक लगाकर हँसते-हँसते विदा करूँगी। आपसे केवल एक प्रार्थना करती हूँ कि युद्ध के समय मेरा या और किसी का थोडा भी मोह न रखे, क्योकि जिसके हृदय मे किसी के प्रति मोह होता है वह युद्ध मे अपनी वीरता नही दिखा सकता। वह कायरता के वशीभूत होकर युद्ध-भूमि से भाग जाता है। मैं एक वीर-पुरुष की विधवा कहलाने मे खुशी का अनुभव कर सकती हूँ, किन्तु कायर की पत्नी कहलाकर सुहागिन रहना मेरे लिए मरण से भी अधिक दु खदायी होगा।"

"देवी ! तुमने जो कुछ कहा वह एक वीर-पत्नी के

योग्य ही है। तुम विश्वास रखो, मैं शत्रुओं को पराजित करके ही तुमसे मिलूँगा। यदि ऐसा नही कर सका तो मेरी मृत्यु का समाचार तुम्हारे पास जरूर आयेगा, किन्तु मैं कायर वनकर शत्रुओ को पीठ नही दिखा सकता। मुझे अपने मोहजाल से अलग कर विदा कर दो मदनरेखा।"

"नाथ ! आप विजय-लक्ष्मी का वरण करने पधारिये तथा शत्रुओ से बीच अपना वैसा ही पराक्रम दिखाइए जैसे मत्त गजराज-समूह के बीच सिंह दिखाता है। मैं आपके वक्षस्थल पर शत्रुओ द्वारा किये गये घावों को धोने और उन पर दवा लगाने मे वहुत वडे आनन्द का अनुभव करूँगी। लेकिन पीठ पर का घाव मेरे लिए दु खदायी होगा। मुझे विश्वास है कि आप क्षात्र-धर्म का पूरा-पूरा पालन करेंगे, शत्रुओ के प्रति क्षमा और उदारता का भाव भी रखेगे और विजय प्राप्त कर मुझे शीघ्र ही दर्शन देंगे। जिस प्रकार मैं आज आपकी पीठ देख रही हूँ उसी प्रकार आपके विजयी मुखकमल का भी दर्शन करूँ, यही मेरी कामना है। एक वात और आपके श्रीचरणो मे निवेदन करना चाहती हूँ—युद्ध के समय भी धर्म और परमात्मा को मत भूलियेगा, क्योकि युद्ध करते समय मृत्यु हो गई तो दुर्गति मे नही जाना पड़ेगा। निरपराधियो पर किसी प्रकार का अन्याय नही होना चाहिए। युद्ध के समय सेना निरपराधी प्रजा को भी सताने लग जाती है और विजयी सेना तो प्राय. प्रजा को लूटना-खसोटना ही

अपना कर्तव्य समझती है, जो सर्वथा अनुचित है। इससे अधिक मुझ जैसी बुद्धिहीना स्त्री क्या कह सकती है ?"

"प्राणप्रिये ! युगबाहु अत्याचारी नही और अत्याचार करना वीर का धर्म नही। जिसकी भुजाओं मे वल है—वह प्रजा की रक्षा करे, जिसके पास ज्ञान है—वह दूसरों को ज्ञानी बनाये और जिसके पास धन है—वह निर्धनो और असहायो की सहायता करे। यही नीति-मार्ग है। जो इस मार्ग से च्युत हो जाता है उसके लिए शक्ति, विद्या, धन ये तीनो अभिशाप बन जाते हैं। वह मनुष्य समाज मे अपमानित होता है। क्षमा वीर का धर्म है मदनरेखा। मेरा उद्देश्य उन लोगों का दमन करना है जो निरपराधी लोगो के साथ अन्याय करते हैं। तुम भली-भाँति जानती हो मदनरेखा कि प्रकृति ने सवको समान नही बनाया—धनी-गरीव, बलवान-निर्वल, सुन्दर-कुरूप, लँगड़े-लूले सभी प्रकार के व्यक्ति मानव-समाज मे जन्म लेते हैं। धर्म ही एक ऐसा स्थल है जहाँ समानता और समभाव की प्रतिष्ठा हो सकती है। यदि ऐसा न हो तो धनी गरीब को खा जाय और बलवान निर्बल के प्राण ले ले। क्षत्रिय का काम धर्म की रक्षा करना है, प्रिये !"

"नाथ ! आप कितने धर्मात्मा है। ठीक ही है जव समर्थ और शक्तिशाली लोग धर्म की रक्षा नही करेंगे तो पृथ्वी पर फैले अन्याय-अत्याचार का शमन कैसे होगा ? मनुष्य की इन्द्रियाँ बडी लोलुप होती है, प्राणनाथ ! जहाँ

कही आँख से कोई सुन्दर रूप दिखाई पडता है, मनुष्य अपने यश, पद, सबकी प्रतिष्ठा गंवाकर उसकी ओर दौड़ पडता है, जहाँ कही धन दिखाई देता है, वही सारे सम्बन्ध और प्रेम को भुलाकर आदमी द्वन्द्व मचाने पर उतारू हो जाता है। क्योकि धन ही सारे भौतिक सुखो की जननी है। युद्ध मे जो लोग मारे जायेगे, उनकी सुहागिनो की माँग से सिन्दूर धुल जायगा, उनके मासूम बच्चे अनाथ हो जायेगे, ऐसे समय मे कामिनियों का अपहरण कर सामन्त उन्हे अपने साथ न लावे। जिस प्रकार सम्भव हो उनकी मुख-सुविधा का प्रवन्ध होना चाहिए क्योकि बिना पुरुप के स्त्री का जीवन निष्फल है और विना माँ के सन्तान का रक्षक कोई नही।" कहते-कहते मदनरेखा की आँखे भर आईं। यह देखकर युगवाहु ने कहा—

"मदनरेखा ! तुम्हारी आँखो मे आँसू की यह अविरल धारा क्यो ? तुमने ही तो कहा था कि आप किसी पर मोह मत रखियेगा, क्योकि मोह विजय का शत्रु है। फिर तुम क्या इन आँसुओ से मेरे हृदय मे मोह के बीजो को नही सीच रही हो ? वीर-वधू इस प्रकार नही रोया करती। इस समय तुम्हारी आँखो मे गौरव की लालिमा होनी चाहिए। धैर्य धारण करो मदनरेखा।"

"प्राणनाथ ! मैं अधीर नही हो रही हूँ। मेरे भीतर माँ का हृदय है, युद्ध के दृश्य को जब याद करती हूँ तब अगणित अनाथ चेहरे बिलखते हुए आँखो के सामने आ

जाते है और सोचती हूँ कि उन अनाथो और विधवाओ का क्या होगा ? क्या अपने राज्य के लिए एक राजा इतने लोगो को देखते-देखते मौत के घाट उतार सकता है ? वह राज्य किस काम का जिसमे रात-दिन दु खियो के आँसू बहे ? यही बात मोहित कर लेती है, नाथ ! आपके हाथो मे तलवार देते मेरा हृदय काँपने लगता है। किन्तु यह आपके यश-अपयश का प्रश्न है, मैं रोक नही सकती ।"

"मदनरेखा ! तुम्हारा हृदय गरीबों और अनाथो के लिए करुणा से भरा है, यह किसी भी राजमहिषी के लिए गौरव की बात है किन्तु कर्म की गहनता की ओर भी तो ध्यान दो। कभी-कभी आदमी को वह काम भी करना पडता है जिसको करते उसका हृदय काँप जाता है, सारे अग शिथिल पडने लगते हैं किन्तु वह कौन-सी शक्ति है जो वलात् उसे आगे धकेल देती है ? यह किसे अच्छा लग सकता है कि लाखो लोग युद्ध की विभीषिका से बे-घर-बार होकर दर-दर माँगते फिरे। सच कहूँ मदनरेखा, यदि बिना किसी खून-खराबे के किसी राज्य की कल्पना की जा सकती है तो वही सच्चा प्रजातन्त्र हो सकता है। मैं कभी-कभी ऐसे राज्य का स्वप्न देखा करता हूँ ।"

"ठीक है प्राणनाथ ! आप प्रयाण कीजिए। धर्म की जय हो। इस पृथ्वी पर आपका यह महान् स्वप्न किसी दिन फलित होकर उतरे ।" □

: आठ :

शुभ मुहूर्त मे युगवाहु ने सेना सहित विजय-यात्रा प्रारम्भ की। मणिरथ ने अपने छोटे भाई के प्रति स्नेह का बहुत ही अनोखा प्रदर्शन किया। वह युवराज को विदा करने कुछ दूर तक भी गया। साथ मे महामात्य सहस्रवुद्धि भी थे। वह मणिरथ को सान्त्वना दे रहे थे, "महाराज, युवराज शीघ्र ही विजय करके लौट आयेगे। आप धैर्य धारण करे। युवराज कोई अवोध वालक नही हैं, फिर उनके लिए इतनी चिन्ता की वात ही क्या है ?"

युगवाहु अपने सामन्तो और विशाल सेना को लेकर चला गया। उसके मन मे कुछ निश्चित सकल्प थे—'विरोधियो का दमन इस प्रकार हो कि धर्म और नीति का किसी प्रकार भी उल्लघन न हो। जो लोग शस्त्र लेकर युद्ध के लिए सामने आये उनके सिवा किसी भी व्यक्ति को कोई कष्ट न दिया जाय। सेना आज्ञा के विरुद्ध आचरण न करे।' इस निश्चय के साथ युगवाहु सेनासहित युद्ध की सीमा पर पहुँचा। युद्ध के नगाड़े वजने लगे, हाथियो की चिघाड़ और घोडो की हिनहिनाहट से आकाश गूँज उठा। सामन्तो ने अपनी-अपनी तलवारें सँभाली। युद्ध की तैयारियाँ होने लगी। युवराज की रक्षा के लिए विश्वस्त

सामन्त नियुक्त किये गये। विद्रोह-पक्ष को युद्ध की सूचना भिजवा दी गई।

युद्ध की घोषणा सुनकर विरोधी-पक्ष से एक दूत ने आकर निवेदन किया—"पृथ्वीनाथ! आप जैसे कुशल योद्धा और शक्तिशाली वीर के साथ युद्ध करके विजय की आशा करना मूर्खता है। हमारे जन-धन की हानि होगी। कितने घरो के चिराग बुझ जायेंगे। अनाथो और विधवाओं के विलाप से सारा जनपद श्मशान भूमि बन जायगा। विनाश की यह लीला हम कदापि देखना नही चाहते। हम आपकी वक्र-दृष्टि नही, कृपा-दृष्टि चाहते है। आपके भुजबल की छत्रछाया मे रहकर जीना चाहते हैं। आप प्रजावत्सल है, हमारी प्रार्थना पर विचार किया जाय। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि राज्य द्वारा निर्धारित सभी नियमो का प्रतिज्ञापूर्वक पालन करेंगे।"

"क्या तुम शत्रु पक्ष से सन्धि का सन्देश लेकर आये हो? यदि यह सही है कि सारी प्रजा महाराज मणिरथ के शासन मे विश्वास रखती है तो सन्धि की बात की जा सकती है। हम राज्य मे पूर्ण शान्ति चाहते हैं। निर्बलों एव निरपराधियो को सताकर अपनी अधिकार-शक्ति का दुरुपयोग करना हम नही चाहते। यदि विद्रोही लोग अपने दुष्कर्मों के लिए पश्चात्ताप कर क्षमायाचना करे और यह प्रतिज्ञा करें कि वे भविष्य मे विद्रोह न करने और प्रजा को कष्ट न देने पर अटल है तथा महाराज

मणिरथ की अधीनता स्वीकार कर उनकी आज्ञा का पालन करेंगे और प्रजा को सन्तुष्ट रखेंगे तो सन्धि की जा सकती है। यदि विद्रोहियो को ये बाते स्वीकार हो तो वे नि.शस्त्र मेरे सामने उपस्थित हों, अन्यथा शस्त्र लेकर युद्ध-भूमि मे सामना करने के लिए तैयार हो जायँ।"

"महाराज! हम किसी भी कीमत पर सन्धि चाहते है। आपकी अधीनता के सिवा हमारे पास कोई चारा नही। मैं सभी विद्रोहियो को आपके सामने उपस्थित करता हूँ।"

सभी विद्रोही निःशस्त्र होकर युवराज युगबाहु के समक्ष उपस्थित हुए। उन्होने युवराज का अभिवादन कर वहुमूल्य वस्तुएं भेंट की और अपने अपराधो के लिए क्षमा माँगकर ऊर्ध्ववाहु होकर प्रतिज्ञा की—"महाराज मणिरथ की जय हो! हम उनके शासन के सम्मुख नतमस्तक हैं, प्राणो की वाजी लगाकर हम प्रजा की रक्षा करेंगे और राज-नियमो का कभी उल्लघन नही करेंगे।"

युवराज ने शरणागत विद्रोहियो को क्षमा कर दिया। 'महाराज मणिरथ की जय' और 'युवराज युगवाहु की जय' के नाद से सारा शिविर गूंज उठा। विजय-दुन्दुभि वज उठी। सभी सामन्त प्रसन्नता से उछल पड़े। सवको सावधान करते हुए युगवाहु ने कहा—"आज से तुम हमारी प्रजा हो। तुम्हारी रक्षा का भार हमारे ऊपर है किन्तु

फिर यदि किसी प्रकार का षड्यन्त्र हुआ तो तुम्हें राज-दण्ड दिया जायगा। शासन की आज्ञा मे रहना तुम्हारा धर्म है। हम तुम्हे महाराज मणिरथ की ओर से विश्वास दिलाते हैं कि तुम्हे किसी प्रकार का कष्ट नही होगा। तुम्हारी प्रत्येक समस्या के समाधान के लिए राज्य उत्तर-दायी है।"

महाराज मणिरथ की अधीनता स्वीकार कर सब चले गये। सामन्तों ने युवराज की नीति-कुशलता की प्रशसा की। उन्होने बिना किसी रक्तपात और सहार के विरोधियो को अपने अधीन कर लिया। युवराज युगबाहु की कीर्ति चारो दिशाओं मे फैल गई।



: नौ :

एक तरफ युगबाहु अपने भाई के राज्य की सुरक्षा के लिए अपना रक्त बहाने के लिए प्रस्तुत होकर निकला था और दूसरी ओर वही भाई अपनी अनुज-वधू की पवित्रता को विनष्ट करने के लिए डोरे डालने की तैयारी कर रहा था।

अपने कक्ष की शीतल छाया में भी महाराज मणिरथ की देह जल रही थी। वे अशान्त थे। लालसा उनके रोम-रोम को दग्ध किये दे रही थी।

सहसा किसी निर्णय पर पहुँचकर उन्होने पुकारा—

"कोई है ? सुमना को उपस्थित करो।"

"महाराज की जय हो ! दासी उपस्थित है। अचानक कैसे याद किया आपने ?" —सुमना ने उपस्थित होकर विनम्र स्वर मे पूछा।

"सुमना ! तुम तो जानती हो, मैंने अपने हृदय की बात तुम्हारे सिवा किसी से नही कही। हर दुःख-सुख मे तुम्हे ही याद करता हूँ और यह भी बता देना चाहता हूँ कि तुम्हारी जैसी सूझ-बूझ की और कोई दासी अन्तःपुर मे नही। मणिरथ पर तुम्हारा बहुत बड़ा उपकार है, सुमना !"

"आप यह क्या कह रहे है महाराज ! आपकी कृपा से हम अपना जीवन बिता रहे है। क्या आपके अनगिनत उपकारो को भुलाया जा सकता है? कहाँ आप एक सम्राट् और कहाँ मैं एक अदना-सी दासी। आपको मेरी जैसी लाखो दासियाँ मिल सकती है किन्तु मेरे लिए आप जैसा स्वामी मिलना असम्भव है। मै तो प्रतिपल भगवान से यही प्रार्थना करती हूँ कि आप प्रजा की रक्षा के लिए सदा कुशल से रहे। चकोर रूपी प्रजा के लिए आप चन्द्रमा के समान है महाराज !"

"सुमना तुम्हारे आगे मैं हमेशा हार जाता हूँ। क्या पैनी बुद्धि दी है कुदरत ने तुम्हे। तुम्हे तो दासी की जगह किसी राजा की पटरानी होना चाहिए था। खैर, मणिरथ के महल मे तुम पटरानी से कम नही।"—एक राजा वासना की ज्वाला से जलता हुआ एक सामान्य दासी की चापलूसी कर रहा था।

"महाराज ! हार-जीत का कोई सवाल नही। सुमना को अपने से अलग करके मत देखिए। हमारा रोम-रोम आपके अन्न-जल से बना है। इतना मान सकती हूँ कि कभी-कभी आप अपने आप हार जाते होगे और देखिए न ! हार-जीत से आदमी का पीछा कहाँ छूटने वाला है। जो बडे-बडे योद्धा सिंह को मात कर द, बडे-बडे समुद्र पार कर जायँ, वे ही नारी के छोटे से नयनो मे डूबकर कातर हो जाते हैं।"

"सुमना ! तुमने मुझे फिर हरा दिया। तुम्हारी जैसी चतुर दासी को पाकर मैं अपने आप को बड़ा भाग्यशाली मानता हूँ। अन्तःपुर की सारी चिन्ताओं से मुझे मुक्त रखने का श्रेय तुम्ही को है। नहीं तो नारियों की कुटिल गति को कौन पुरुष रोक सकता है ?"

"प्रजानाथ ! जब आपके लिए अपने प्राणों को लगा दिया तो फिर मैं आपके हित-अहित की चिन्ता न करूँ, क्या एक दासी के लिए यह शोभा देता है ? यदि आप अन्तःपुर की ओर से भी चिन्तित होने लगे तो राज-काज कैसे चलायेंगे। इसीलिए तो योग्य दास-दासी रखे जाते हैं जो स्वामी के अनुकूल आचरण कर उसे चिन्ताओं से मुक्त रखें। आप बड़े दयालु हैं, महाराज !"

"सुमना ! मैंने तुम्हें एक विशेष कार्य के लिए यहाँ बुलाया है। महारानी मंजुला से तुमने यह सुना होगा कि महाराज आजकल बहुत उदास रहते हैं किन्तु उदासी का सही कारण तुम्हें मालूम है ?"

"क्या कहते हैं महाराज ! यदि उदासी का कारण मालूम होता तो उसे दूर करने के लिए प्राणों की बाजी नहीं लगा देती ?"

"सुमना ! तुमसे मुझे यही आशा थी। लेकिन याद रखना इस कारण को पूरी तरह से गुप्त रखना है। कानो-कान किसी को पता न चले। वचन दो यह भेद किसी पर प्रकट तो नहीं होने दोगी ?"

"महाराज ! आप इसकी चिन्ता मत कीजिए। चाहे मेरी जान चली जाय लेकिन भेद तो क्या उसकी हवा भी लोगो के कानो तक नही पहुँच पायेगी। अन्तःपुर के भेदों को छिपाते आधी उम्र बीत गई, क्या कभी कोई बात कही बाहर सुनी आपने ? इस सम्बन्ध मे आप थोडा भी भय मत रखिये और क्या स्त्री के भीतर से सही बात निकाल लेना इतना आसान है ? उसके पास कई जाल होते हैं जिसमे उलझकर बडी से बडी बुद्धि चकरा जाती है। आप मुझ पर विश्वास रखिए, महाराज।"

"तुम्हारा जवाब नही सुमना। तुम्हरी चतुराई देखकर ही तुम्हे याद किया है। अच्छा बताओ, तुम युगबाहु की पत्नी मदनरेखा को जानती हो ?"

"महाराज ! यह पूछिए कि उसके बारे मे क्या नही जानती। फिर यदि मदनरेखा को मैं नही जानूँ तो जानेगा कौन ? वह अपूर्व सुन्दरी है। उसका रूप अप्सराओ को भी लजाने वाला है। उसके रूप की बराबरी करने वाली दूसरी स्त्री राजमहल तो क्या पूरे राज्य मे भी नही मिलेगी महाराज ! वह पुरुष कितना भाग्यशाली होगा जो एक बार भी मदनरेखा पर अपना अधिकार कर ले।"

"सुमना ! वही भाग्य मैं एक बार चाहता हूँ। मैंने जब उसे हँसते हुए देखा, मेरे हृदय पर अचानक बिजली गिर गई। वह प्रासाद-कोष्ठ पर अपनी सखियो के साथ विनोद कर रही थी। ऐसी सुन्दरता जो छूते ही मैली हो

जाय। आह ! सच कहता हूँ सुमना, यदि तुमने मुझे मदनरेखा से एक बार मिला दिया तो तुम्हारा मुँह मोतियो से भर दूँगा। मैं उसे अपनी प्रेयसी वनाना चाहता हूँ। किसी प्रकार छल करके मैंने युगवाहु को तो अपने रास्ते से हटा दिया, किन्तु मदनरेखा को मिलाना अब तुम्हारा काम है।"

"महाराज उसको तो क्या, वड़ी से वड़ी सती-स्त्री को भी आपके चरणो की दासी न वना दूं तो मेरा नाम सुमना नही।"

"वस सुमना ! तुम्हे यह काम हर हालत मे करना है। मेरा जीना-मरना अव तुम्हारे हाथों मे है। यदि तुमने मेरा यह कार्य नही किया तो मैं तडप-तडप कर मर जाऊँगा।"

"मरे आपके दुश्मन। महाराज, आपके मुख से ऐसी वातें शोभा नही देती। आप निश्चिन्त होकर रहिए, एक दिन मदनरेखा स्वयं आपको अन्त पुर मे वुलाने के लिए व्याकुल हो जायेगी। आपके प्रति उसके मन मे ऐसी प्यास जगाऊँगी कि रेगिस्तान मे तडपते हुए चलना पडे तव भी आपके पास आयेगी। मुझे अपनी वातो से उसके मन की चट्टान को पिघलाते देर नही लगेगी महाराज !"

"वहुत अच्छा सुमना ! वताओ इस काम के लिए तुम्हें क्या सहायता चाहिए ?"

"महाराज, किसी कामिनी को वश मे करने के लिए सेना की आवश्यकता नही होती। हर स्त्री चाहती है कि वह पुरुष की आँखो मे सुन्दर लगे और अपनी इस सुन्दरता को निखारने के लिए वह नाना प्रकार के वस्त्र और आभूषण धारण करती है। वह जीभ के स्वाद की भी लोलुप होती है। अच्छी-अच्छी खाने की चीजो पर उसका मन यो ही चल जाता है। इन वस्तुओं का प्रलोभन देकर किसी भी स्त्री को सहज ही आकर्षित किया जा सकता है और इनके लिए स्त्रियाँ अपने पति, पुत्र, परिवार सबको त्याग सकती है। इसलिए आप सुन्दर वस्त्राभूषण और खाद्य सामग्री की व्यवस्था कर दीजिए। फिर मदनरेखा तो क्या आप जिस नारी को कहे आपको लाकर सौप सकती हूँ।"

"सुमना, क्या तुम्हे मदाकिनी की सहायता चाहिए ?"

"महाराज, मदाकिनी की सहायता से काम विगड़ सकता है। आप तो जानते है स्त्री के पेट मे कोई भी बात कितनी ही गोपनीय क्यो न हो, नही पचती। कही-न-कही वह उसे उगल देती है। इसलिए इस काम के लिए सुमना ही काफी है। एक बात और आपको शायद मालूम नही कि युवराज के सीमा पर चले जाने के वाद मदाकिनी मदनरेखा पर विशेष ध्यान देने लगी है। आजकल युवराज्ञी उसे अपनी दासी नही सखी मानती हैं। इसलिए आप मेरे ऊपर यह भार सौपकर निश्चिन्त हो जाइए।"

"सुमना ! तुम भी एक स्त्री हो, ध्यान रखना कही वह बात तुमसे ही न हो जाय जिसके लिए मंदाकिनी पर शंका है। यह एक प्रकार से चोरी है जो पकड़े जाने पर वड़े से वडा दण्ड दिला सकती है।"

"हाँ महाराज, मन की चोरी। चोरो को दिन-रात दण्ड देने वाले मेरे महाराज भी चोरी करते हैं, फिर इस चोरी की सजा ?"

"बाँहो का वन्धन। आँखो से ताडना। भौंहो से तीर चलाकर घायल करना। दूर जाकर तड़पाना। इससे भी अधिक ......?"

"हाँ, महाराज को अपने मन के कारागार से कभी मुक्त नही करना।"

"सुमना ! मैं तुमसे जीत नही सकता, किन्तु हारकर भी विजय अपनी ही है। जाओ, इस काम को जल्दी करो—शीघ्र से शीघ्र। एक पल का विलम्ब भी प्राणलेवा प्रतीत होता है।"

□

: दस :

चतुरा दासी सुमना ने युवराज्ञी से कुशल समाचार जानने के पश्चात् कहा—"लगता है स्वामिनी ! आपका मुख कमल अपने भीतर एक तेज धारण किये मुस्करा रहा है। आपके भीतर जो तेज समाहित है वह एक दिन प्रकट होकर पृथ्वी का स्वामी बनेगा। बहुत देर नही, जल्दी ही दास-दासियो को हीरे-मोती बाँटे जायेगे।"

"सुमना ! तुम्हारे मुख मे सरस्वती का वास हो। भगवान ऐसा ही करे, जैसा तुमने कहा। कहो, इस समय कैसे आना हुआ ? महाराज कुशल तो है ? महारानी मजुला की गोद भरने के लिए तुमने क्या किया ?"

"स्वामिनी ! महाराज मणिरथ समर्थ राजा हैं। समस्त भरतक्षेत्र से उत्तमोत्तम औषध-विशेषज्ञो को उन्होने आमन्त्रित किया है। राज्य की समस्त प्रजा भावी युवराज की प्राप्ति के लिए अपने-अपने इष्ट-देवो से प्रार्थना कर रही है। मैं भी इस प्रयत्न में हूँ कि किसी सिद्ध महापुरुष का आशीर्वाद महारानीजी के लिए प्राप्त कर सकूँ। अत आप इस विषय की चिन्ता छोड़े। महारानीजी की गोद अवश्य हरी होगी ?"

युवराज्ञी यह सुनकर सहज ही आश्वस्त हुई और उसने कहा—

"महाराज मणिरथ प्रत्येक दृष्टि से पुण्यवान है। केवल यही अभाव मुझे खल रहा था······।"

"हाँ, स्वामिनी! महाराज मणिरथ परम पुण्यवान है। इसके साथ ही उनकी शारीरिक शक्ति तथा शोभा भी अद्वितीय है। कितने वलिष्ठ है वे! कितने तेजवान! उनके कटाक्षो मे बिजलियाँ-सी कौंधती है। एक वार जिस कामिनी पर उनका कटाक्ष-पात हो जाय, वस फिर वह महाराज की ही हो जाती है। कितने रसिक हैं—महाराज मणिरथ!"

"हाँ मुमना! राजा को पराक्रमी होने के साथ रसिक भी होना चाहिए। यदि राजा रसिक न हो तो सुन्दरियो के मन की प्यास कैसे बुझेगी और सुन्दर पुरुष ही सुन्दरी के महत्व को समझ सकता है।"

"आप महाराज को अच्छी तरह समझती हैं स्वामिनी! उन्होने आपके लिए उपहार भेजा है। देखिए कितने सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, आभूपण और खाद्य-सामग्री। इन वस्त्रो और आभूपणो से आपके सौन्दर्य मे चार चाँद लग जायेंगे।"

"यह वात अचानक कैसे महाराज के मन मे आ गई? इस समय मेरे पति समर-भूमि मे हैं। उनकी अनुपस्थिति

मे यह शृंगार किसके लिए करूँगी। मुझे तो दिन-रात उन्ही की चिन्ता लगी रहती है, सुमना। तरह-तरह की आशकाएँ मन मे तूफान मचाये रहती हैं। कभी-कभी सपनो मे वे मुझे धीरज देते है—'मैं जयश्री का वरण करके आ रहा हूँ।' कुमार चन्द्रयश अभी छोटे हैं। इस समय यह सामग्री··· ·।"

"सकोच की कोई वात नही स्वामिनी! सधवा के लिए शृंगार एक प्रकार की पूजा है। भगवान करे आपका सुहाग सदा बना रहे और सबसे वडी वात यह है कि क्या महाराजा मणिरथ कभी आपको उदास और खिन्न रहने दे सकते हैं? आपके लिए उनके हृदय मे कितना स्नेह और आदर है, यह वे ही जानते हैं। दास-दासियो से हमेशा आपका कुशल-समाचार जानने को उत्सुक रहते है। इतने पर भी सन्तोष नही हुआ तो विशेप रूप से मुझे आपकी सेवा मे नियुक्त कर दिया है। उनका आदेश है कि मैं कभी भी आपको चिन्तित न रहने दूँ और जिस किसी भी प्रकार की आवश्यकता अनुभव हो उसकी सूचना महाराज को दूं। यह उपहार उनके अमित स्नेह के सूचक है, स्वामिनी! आप खुशी-खुशी इसे स्वीकार कीजिए।"

"सुमना! महाराज के आदेश से कल ताम्बूलवाहिनी आयी थी। महाराज ने ताम्बूल, गन्ध, कुमकुम आदि प्रसाधन-सामग्री भेजी थी। मैं बहुत संकोच में पड़

गई। क्या महाराज का इस प्रकार की वस्तुएँ मेरे पास भेजना उचित है ?"

"स्वामिनी ! युवराज के समर-भूमि मे चले जाने के पश्चात् आपकी प्रत्येक आवश्यकता को पूरा करना महाराज अपना कर्तव्य मानते है। आपको यह सामग्री चाहिए ही और यदि महाराज ने इसे स्वयं आपके पास भेज दिया तो इसमे अनुचित क्या है ? घायल की मनोदशा घायल ही जानता है।"

"सुमना ! तुमने समझा नही। मेरे कहने का तात्पर्य यह था कि ये सब चीजे केवल पति की ओर से आनी चाहिए क्योकि सुहाग का स्वामी वही होता है पतिव्रता नारी के लिए।"

"स्वामिनी ! मैंने तो सुना था राजा सबका पति होता है। क्या वह आपका पति नही हो सकता ?" यह सुनकर मदनरेखा चौकी, चिन्तित हुई, किन्तु धैर्यपूर्वक बोली—

"सुमना ! तुम बिलकुल भोली हो, राजा सब स्त्रियो का पति उस अर्थ मे नही हो सकता जिस अर्थ मे पति-पत्नी का आपसी सम्बन्ध होता है। समझी ?"

"मैं तो बिलकुल गँवार हूँ स्वामिनी ! अच्छा, महाराज के लिए आपका कोई सन्देश ?"

"तुम महाराज को मेरा अभिवादन कहना और उनकी

सेवा में निवेदन कर देना कि मैं उनकी इस कृपा के लिए बहुत आभारी हूँ। उन्होने मेरे लिए जो सामग्री भेजी है उसे प्रसाद के रूप मे माथे से लगाती हूँ।"

मदनरेखा ने सुमना को पुरस्कार देकर विदा किया। वह प्रसन्न होती हुई मणिरथ के पास गई। उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न था। इधर मणिरथ मदनरेखा के सन्देश के लिए व्याकुल था।

"महाराज की जय हो! आपका मनोरथ पूर्ण होने में अब कोई सन्देह नही है। आप द्वारा भेजी गई सामग्री को मदनरेखा ने प्रसन्नतापूर्वक रख लिया और मुझे पुरस्कार भी दिया।"

"किन्तु यह तो बताओ कि तुमने उससे जाकर क्या कहा। क्या तुमने मदनरेखा से मेरा उद्देश्य कहा था?"

"महाराज! आप कैसी बाते करते हैं। एकाएक शिकार थोडे ही हाथ में आता है। पहले दाने फेकने पडते हैं, जाल बिछाना पडता है। मुझे पूरा भरोसा है कि मदनरेखा आपके जाल मे फँस जायेगी क्योकि स्त्री उसी पुरुष के गुणो की प्रशंसा सुन सकती है या स्वय अपने मुँह से प्रशसा कर सकती है जिसको वह चाहती हो। जिस पुरुष के प्रति स्त्री के मन मे प्रेम नही होता वह उसके नाम से भी जल-भुन जाती है। मैंने आपकी रसिकता, पराक्रम और सौन्दर्य-प्रेम की कहानी जब मदनरेखा को

सुनाई, तव सारी वातो को सुनकर वह प्रसन्न हो रही थी और आपने ताम्बूलवाहिनी के द्वारा जो शृंगार प्रसाधन भेजे थे उसकी भी चर्चा उसने की।"

"सामग्री रख लेने से ही मदनरेखा मुझे चाहने लगेगी, यह कैसे तुमने मान लिया? हो सकता है यह सव करने का उद्देश्य उसकी समझ मे न आया हो और मेरी कृपा समझकर उसने सब कुछ रख लिया हो। इसलिए तुम ऐसी सामग्री लेकर एक वार फिर जाओ। ध्यान रहे कि अवकी सामग्री पहले से उत्तम और आकर्षक होनी चाहिए और मेरा उद्देश्य उसके सामने प्रकट करना भी मत भूलना। उसके वाद वह जो कुछ कहेगी उससे प्रकट हो जायगा कि मदनरेखा मुझे चाहती है या नही।"

मणिरथ की आज्ञा के अनुसार सुमना पुन: सामग्री लेकर मदनरेखा के पास गई।

"स्वामिनी! आप वड़ी भाग्यशालिनी है। महाराज ने पुन. आपके लिए यह वहुमूल्य सामग्री भेजी है। आप इसे स्वीकार कीजिए।"

"सुमना, आखिर इतनी जल्दी-जल्दी सामग्री भेजने का प्रयोजन क्या है? महाराज क्या चाहते हैं? तुम साफ-साफ क्यो नही वताती? पिछली वार भी कोई वात तुम्हारी जवान पर वार-वार आ जाती थी किन्तु उसे कहे विना तुम इधर-उधर की वाते करती रही। वताओ, सच-सच वताओ, क्या वात है? तुम जानती हो, मेरे

पति परदेश गये है। उनकी अनुपस्थिति मे शृगार और कौतुक की बात तो दूर रही, मुझे खाना-पीना, सोना-बैठना भी अच्छा नही लगता। वही स्त्री सदाचारिणी रह सकती है जो पति के परदेश चले जाने पर वस्त्राभूषण और शृगार से दूर रहकर सयम का पालन करे। पति के वियोग ने मुझे सबके प्रति उदासीन बना दिया है। इसलिए यह सब सामग्री तुम वापिस ले जाओ और महाराज से निवेदन कर देना कि अभी इनकी आवश्यकता नही, जब आवश्यकता होगी मँगा लूँगी।"

"स्वामिनी, आप महाराज का मन्तव्य नही समझती। यदि आपने यह सामग्री लौटा दी तो उन्हे दुःख होगा। उनके हृदय मे आपके प्रति सीमातीत प्रेम है। आपको प्रसन्न करने के लिए ही यह सब सामग्री उन्होने भेजी है। आप महाराज के हृदय मे ऐसी बस गई हैं कि एक क्षण के लिए भी वे आपको भुला नही पाते। आपके बिना उनको जीवन ऐसा निःसार लगता है जैसे प्राण के बिना शरीर हो, जल के बिना मछली। इसलिए आप प्रसन्न होकर उनकी कामना पूर्ण कीजिए। वे आपको अपनी पटरानी बनाना चाहते है। सच मानिये, सब प्रकार के सुख-भोग और ऐश्वर्य वे आपके चरणो मे डालने के लिए तैयार हैं। इसलिए आप उनके प्रेम प्रस्ताव को स्वीकार कर लीजिए।"

सहसा एक विस्फोट-सा हुआ। आग बरसाती हुई

मदनरेखा वोली—"तो यही कहने के लिए तुम आई थी न कि महाराज मणिरथ मदनरेखा के हाड-माँस के शरीर पर अपनी सारी कुलीनता, नैतिकता और न्याय-प्रियता की वलि चढाना चाहते है ? एक पतिव्रता का शील भग कर स्वर्ग के सुख की कामना करते हैं ? सुमना, तुम जाकर महाराज से निवेदन करना कि मदनरेखा का शरीर युवराज के सिवा कोई पर-पुरुप छू तक नही सकता। उसे सुख-भोग से ज्यादः प्यारा पतिव्रत धर्म है। वह उस सौन्दर्य मे आग लगा देगी जो भ्रष्ट और दुराचारिणी वनाने मे सहायक हो। स्त्री के शील मे कुल की मर्यादा और लक्ष्मी का निवास होता है सुमना। जो स्त्री दुराचारिणी होकर अपने पति से छल करती है वह जाति, कुल और यहाँ तक कि राज्य को ले डूवती है। और तुम्हारे अपराध का दण्ड भी अभी देती हूँ। देखती हो यह तलवार ! मेरे जेठ को पतन के मार्ग पर ले जाने और मेरा सतीत्व भग करने का कारण तुम वनाना चाहती हो ? अभी तुम्हारे शरीर के टुकड़े कर देती हूँ। किन्तु नही, एक अवसर और देती हूँ। यदि तुझे अपने प्राण प्रिय हैं तो यहाँ से भाग जा और फिर कभी यहाँ आने का साहस मत करना !!!"

भय से थर-थर काँपती दासी प्राण वचाकर गिरती-पड़ती भागी और सीधी महाराज मणिरथ की शरण मे पहुँची। □

: ग्यारह :

"सुमना ! सुमना !! क्या हुआ ? काँप क्यो रही हो ? क्या कोई अनिष्ट हो गया ?"

"महाराज ! मदनरेखा साक्षात् महाकाली है । मैंने जब आपकी बात प्रकट की तो उसकी आँखे क्रोध से जलने लगी और तलवार लेकर वह मेरा सिर काटने ही वाली थी कि मैं वहाँ से भाग खडी हुई । अब फिर उसके पास कभी नही जाऊँगी । उसका आज का भयकर रूप देखकर मैं तो आपसे भी यही प्रार्थना करूँगी कि आप उसको पाने का मोह छोडकर सदा के लिए उसे भूल जाइए ।"

"प्रयत्न करने पर भी मैं उसे भुला नही सकता, सुमना । मेरा जीना-मरना उसी के हाथ है । यदि उसने मेरी ओर दृष्टि न डाली तो मैं तड़प-तडप कर प्राण त्याग दूंगा ।"

"महाराज, मान लीजिए, यदि वह तलवार आपके ऊपर उठ गई तो ?"

"क्या वकती है तू ? क्या मदनरेखा मेरे ऊपर तलवार उठायेगी ? क्या उसके सामने एक राजा के मान-अपमान का कोई प्रश्न नही ?"

"महाराज, होगा। लेकिन जब नारी का शील लुटता है तो वह सब कुछ भूल जाती है, पागल हो जाती है और ऐसा काम कर डालती है जिसकी आशका भी नही की जा सकती। क्या राजा, क्या रंक, उस समय शत्रु के सिवा किसी और रूप मे नही दिखाई देता।"

"सुमना ! तुम्हे नही मालूम, मदनरेखा रूपवती होने के साथ-साथ कितनी चतुर है। मैंने मान लिया कि नारी की बुद्धि से नारी हार गई। तुम तो प्राण देने को तैयार थी, एक ही धमकी से डर गई ?"

"महाराज ! मैंने होनहार को देख लिया है, किसी प्रकार की आशा रखना व्यर्थ है। विश्वास नही तो ·····।"

"हाँ सुमना ! अब स्वयं मुझे मदनरेखा से उसके प्रेम की भीख माँगनी पड़ेगी। जब तक एक राजा किसी रूप की देवी के दरवाजे तक पैदल चलकर न जाय वह कभी प्रसन्न हो सकती है ? सब कुछ हार सकता हूँ लेकिन मदन-रेखा को नही।"

मणिरथ ने सान्त्वना देकर सुमना को विदा कर दिया। फिर अपने मन मे सोचने लगा—'मदनरेखा सुन्दरी ही नही, वीर हृदया और चतुरा भी है। उसने दासी को डराकर अपनी वीरता का परिचय दिया है और मेरे प्रति प्रेम होने पर भी उसने सुमना के सामने उसे प्रकट करना उचित नही समझा। वह अपने और मेरे

बीच किसी तीसरे को नही आने देना चाहती है। कैसी चतुर है ! यदि मेरे प्रति उसके हृदय मे प्रेम न होता तो मेरे द्वारा भेजी गई सामग्री को स्वीकार कैसे करती ? वास्तव मे उसका ऐसा करना उचित है कि रहस्य कोई तीसरा न जान पाये। इन दास-दासियों का क्या भरोसा ? मैं स्वय मदनरेखा से मिलकर उसके हृदय को जीत लूँ। मुझे स्वय उसके पास जाना चाहिए। मेरे जाने पर वह मेरा प्रेम प्रस्ताव अवश्य स्वीकार कर लेगी। यदि उसके मन मे किसी प्रकार का भय और सकोच भी होगा तो मेरे जाते ही वह मिट जायगा।' मणिरथ इस उधेड-बुन मे लगा रहा। दूसरी ओर उसे यह सन्देश भी मिल गया था कि युगबाहु ने विद्रोहियो को अपने अधीन कर लिया है और शीघ्र ही आने वाला है। इसलिए मदनरेखा से जितना जल्दी हो सके प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लेना चाहिए, नही तो युगबाहु के आने पर काम कठिन हो जायगा। इसके सिवा यदि मदनरेखा ने सारी बातें युगबाहु को सुना दी तो वह मेरा शत्रु हो जायगा और वह भी नही मिल पायेगी। बहुत सोच-विचारकर उसने रात के समय मदनरेखा के महल में जाने का निश्चय किया।

आधी रात का समय था। निशा-निमन्त्रण को स्वीकार कर चन्द्रमा धीरे-धीरे रजनी की अलको मे अपना मुँह छिपाता जा रहा था। इस सुख प्रसग मे तारे दीप की भाँति झिलमिला रहे थे। चाँदनी धीरे-धीरे

अन्धकार की बाँहो मे सिमटती जा रही थी। रातरानी की गन्ध से सारा वातावरण मादक बन गया था। लताएँ वृक्षों की गोद मे अलसा रही थी। प्रकृति का यह मनोरम रूप मणिरथ के हृदय मे उत्सुकता के बीज बो रहा था। पूर्व नियोजित मार्ग से मणिरथ मदनरेखा के महल मे उपस्थित हुआ। वातायन से चुपके से प्रवेश करती वायु के स्पर्श से अद्भुत सुन्दरी मदनरेखा किसी स्वप्न-सुन्दरी सी लग रही थी। उसके खुले हुए केश ऐसे लग रहे थे जैसे मुखरूपी मणि की रक्षा मे अनेको नागिने सलग्न हैं। उसका अनिंद्य सौन्दर्य कामदेव के लिए स्वाभाविक निमन्त्रण था। मणिरथ चाहता था कि वह मणि को शीघ्र अपनी बाँहो मे उठा ले, किन्तु नागिनो के भय से डर जाता था। वह अधीर हो रहा था। मणिरथ ने वातायन से ही सम्बोधित किया—"सुन्दरी ! आलस्य छोडो, कमल सी आँखो को खोलो, देखो तुम्हारा कोई प्रेमी यहाँ खडा तुम्हारे रूप की भीख माँग रहा है।"

मदनरेखा सो रही थी। उसने एक अँगडाई लेकर करवट बदली। फिर वही स्वर सुनाई पडा। वह चौंक पडी –"कौन ? कौन हो तुम ? वातायन के पास खड़े क्या कर रहे हो ? यहां क्यो आये हो ?"

मणिरथ मन-ही-मन प्रसन्न होने लगा। मदनरेखा अब शीघ्र ही उसे अपनी बाँहे फैलाकर बुलाने वाली है।

उमसे मिलकर अब मैं शीघ्र ही अपना मनोरथ पूर्ण कर सकता हूँ। इसी कुतूहल के साथ वह बोल पडा—"मृग-नयनी! पहचाना नही? क्या मेरे ही सपनो मे खोई-खोई सो रही थी? मैं तुम्हारा प्रेमी मणिरथ हूँ। चौकने की कोई जरूरत नही। मेरी बाँहो मे आकर अपने को निर्भय समझो। तुम्हे क्या मालूम तुम्हारी चाह मे मणिरथ का एक-एक पल कैसे बीत रहा है। जब तुम गंगा और यमुना की शीतल धाराओ के सगम पर जल-क्रीडा कर रही थी, तुम्हारी याद मे मेरा हृदय रेगिस्तान-सा झुलस रहा था। मैं पास रहते हुए, देखते हुए और जानते हुए भी तुम्हे नही पा सकता था। इतने पास रहकर भी इतनी दूरी?"

"धिक्कार है मुझे महाराज! मेरा रूप आपके लिए पतन का मार्ग बन गया? आप युवराज को अपने पुत्र के समान मानते हैं। मैं आपकी कन्या के समान हूँ। क्या एक नारी के रूप पर मोहित होकर अपनी सारी मर्यादाये भूलकर मुझे अपनी प्रेयसी बनाना चाहते है? मेरी समझ मे नही आता कि जो वीर रण-भूमि मे सिर कट जाने पर भी किसी के सामने अपनी दीनता नही दिखाता, वह एक नारी के सामने इतना छोटा कैसे बन गया है? क्या वासना ने आपके देवत्व को हर लिया है? किसी नीति कुशल राजा के लिए इस प्रकार के विकार से ग्रसित होना ठीक नही महाराज। क्षणिक रूप और यौवन के लोभ मे आप अपने चिरस्थायी यश को मिट्टी मे क्यो मिलाना

चाहते हैं ? सुमना का सिर न काटकर मैंने वहुत वडा अपराध किया। उसी कुलटा ने मेरे प्रति आपके हृदय मे यह भावना जगाई है, नही तो एकाएक आपके मन मे ऐसी बात क्यो आती ? जो काम आपकी दृष्टि मे अपराध है, जिसके लिए सर्वप्रिय जैसे सामन्त को आपने राज्य से वाहर निकाल दिया, क्या उसी के लिए स्वयं यहाँ तक आये है ? क्या यही क्षत्रिय कुल की लाज है ? क्षत्री तो स्त्री के शील की रक्षा करता है महाराज ! यदि रक्षक ही भक्षक हो जायगा तो कोई भी पिता अपनी पुत्री का गला जन्म लेते ही घोंट देगा। आप राजकुल की मर्यादा को ध्यान मे रखते हुए जिस रास्ते से आये है उसी रास्ते से लौट जाइए, इसी मे आपका व राज्य का हित निहित है।"

"सुन्दरी ! कोई स्त्री दूसरे के लिए पुत्री या प्रेमिका के रूप मे पैदा नही होती ? समाज इसे अपनी आवश्यकतानुसार बना लेता है। तुम इतनी रूपवती होने के साथ ही चतुर भी हो इसलिए मैं तुम्हे अपनी पटरानी बनाना चाहता हूँ। केवल एक बार मुझे अपना बना लो फिर राज्य तो क्या मेरे प्राण भी तुम्हारे चरणो मे लौटेगे।"

"महाराज आप मेरे पिता तुल्य है। आपने समाज की मर्यादाएं वनाई है। आप ही बताइए यदि मर्यादा न हो तो कौन रोक सकता है अपराधो को ? फिर ये दास-दासियाँ ही कहने लगेगे कि हम ही राजा-रानी है, सिंहासन

हमारा है, राजमुकुट हमारे सिर पर होना चाहिए। क्या यह सब आप सहन कर सकते है? नारी एक ही बार किसी की पत्नी बनती है, अग्नि को साक्षी बनाकर माता-पिता जिस पुरुष के हाथो मे सौप देते हैं उसी के द्वारा वह चिता की आग पर सजा दी जाती है। विवाह से लेकर मृत्यु तक कोई दूसरा पुरुष उसको छू भी नही सकता। यदि ऐसा न हो तो न कोई राज्य रह जायगा न कुल, लोग मनमाने ढग से चलेंगे और विनाश की आग लग जायगी। यदि मनमानी करना ही ठीक है तो मेरे पति को आपने विद्रोहियो का दमन करने के लिए रण-भूमि मे जाने की क्यो आज्ञा दी? वे विद्रोही जिस स्त्री को चाहते अपनी पत्नी बना लेते, जिसका धन होता लूट लेते। क्या दूसरो को नीति और न्याय की शिक्षा देने वाला स्वयं अनैतिकता पर इतना उतर आया है?"

"प्रिये! पृथ्वी का स्वामी आज तुम्हारे सामने भिखारी बनकर आया है। अपने प्रेम से मुझे वंचित मत करो। इस रहस्य का किसी तीसरे को पता नही लगेगा। मैं जिस आशा को लेकर तुम्हारे पास आया हूँ उसे पूर्ण कर दो, निराश मत करो। एक-एक पल का विलम्ब मेरा प्राण ले रहा है।"

"महाराज! आप जैसे वीर पुरुष के मुख से ऐसी बाते शोभा नही देती। मर्यादा-पालक, आप जैसे कुलीन

पुरुष का यह कर्तव्य नहीं है कि कन्या-सी मानी जाने वाली अपनी अनुज-वधू को धर्म भ्रष्ट करने का प्रयास करे।"

"धर्म राजाओ के हाथ का खिलौना है सुन्दरी। तलवार के सामने वह हमेशा झुकता है, दौलत की गुलामी करता रहा है, बुद्धिमानो के इशारे पर नाचता रहा है। धर्म की घिसी-पिटी लकीर पर तो मजबूर और कमजोर लोग चलते है जिनकी भुजाओं मे शक्ति नही, जिनके पीछे जनमत नही, जिनकी आत्मा धर्म की अँधेरी कोठरी मे कैद है। जब भी धर्म के सामने कोई पेचीदा सवाल आया है, धर्माचार्यो ने उसे यही कहकर टाल दिया कि धर्म की गति विचित्र है।"

"महाराज, आपकी दृष्टि मे धर्म खिलौना हो सकता है किन्तु जिन्हे धर्म-मार्ग पर चलना है उनके लिए धर्म प्राण है। धर्म की रक्षा के लिए लोगों ने प्राण गँवा दिये हैं किन्तु अधर्म के मार्ग पर एक पग रखना भी स्वीकार नही किया है। धर्म की शक्ति के आगे तो तलवारे झुक जाती हैं। राजा धर्म का प्रतिनिधि होता है। जिस राज्य मे राजा द्वारा धर्म-नीति की अवहेलना होती है वह राज्य नष्ट हो जाता है। क्या आप भी ऐसा ही चाहते है ?"

"मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ मदनरेखा, तुम अपने हठ

को छोड दो। तुम्हारी जैसी बुद्धिमती स्त्री का सहयोग पाकर मैं राज्य को आदर्श और प्रजा को सुखी बनाने मे समर्थ हो सकता हूँ। तुम्हारी सहायता के विना मैं पागल हो जाऊँगा और प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगेगी। क्या लाखो-करोडों लोगो के ऊपर यह अधर्म नही होगा ? दया की भीख दे देना ही तो सबसे वडा धर्म है प्रिये ! और नारी गृहलक्ष्मी होती है। वह किसी भी भिखारी को अपने द्वार से खाली हाथ नही लौटाती। क्या तुम इस परम्परा को इतनी निर्दयता से तोड दोगी ? मेरी सहचारिणी बनकर राज्य मे आशा के दीप जला दो मदनरेखा ! राज्य का स्वामित्व तुम्हारे हाथो मे देकर मैं जीवन भर तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा।"

"महाराज ! एक स्त्री के सतीत्व के आगे एक राज्य तो क्या तीनो लोक का राज्य भी तुच्छ है। पतिव्रत मे जो सुख है, पति की बाँहो मे जो अभय और विश्राम है उसे स्वर्ग का कल्पवृक्ष भी नही दे सकता। स्त्री के लिए पति देवता के समान होता है और पुरुष के लिए स्त्री देवी की तरह वरदायिनी होती है। जब दोनो अपने-अपने धर्म से पतित हो जाते है तो उनका जीवन नरक बन जाता है। क्या महारानी मजुला से विश्वासघात कर आप नरक मे जाना चाहते हैं और युवराज से विश्वासघात करा कर मुझे नरक मे भेजना चाहते हैं ? ऐसा कदापि नही हो सकता। अपना सतीत्व बचाने के लिए मुझे चाहे जितने

सङ्कटो का सामना करना पड़े, मैं पीछे नही हट सकती। मुझे पतिव्रत-धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राण भी त्यागने पड़े तो मैं हँसते-हँसते अपनी जान दे दूँगी। जहाँ तक प्रजाहित का प्रश्न है उसके लिए मैं आपसे पूछना चाहती हूँ कि क्या दुराचारी स्त्री-पुरुष भी प्रजा को रक्षा या कल्याण कर सकते हैं। आप मेरे सहयोग और बुद्धिमत्ता से जिस राज्य की उन्नति करना चाहते है, उसका उत्तराधिकारी आपने अपने छोटे भाई को बना दिया है और उन्हे मेरा सहयोग प्राप्त है। इसके लिए आपको अनुचित सम्बन्ध स्थापित करने की क्या आवश्यकता है ? यदि आप मेरी असाधारण बुद्धि का चमत्कार देखना चाहते है, तो अपने छोटे भाई के कन्धो पर राज्य का भार सौपकर सन्यास ले लीजिए। आप बार-बार मुझे अपने ऊपर विश्वास करने के लिए कहते हैं, किन्तु जानना चाहती हूँ कि एक ओर तो आपने मेरे पति को युवराज बनाया और दूसरी ओर मुझे अपनी पटरानी बनाना चाहते हैं, ये दोनो बाते साथ-साथ कैसे चल सकती है ? क्या आपने महारानी मजुला को ग्रहण करते समय अग्नि को साक्षी मानकर यह प्रतिज्ञा नही की थी कि मैं तुम्हारे सिवाय दुनिया की सभी स्त्रियो को माता और बहन समझूंगा ? इस प्रतिज्ञा के द्वारा आपने जिन स्त्रियो का परित्याग किया, मैं उन्ही मे से एक हूँ। किन्तु आज आप वासना के वशीभूत होकर त्यागी हुई वस्तु अपनाने के लिए तैयार है। कहाँ गई

आपकी प्रतिज्ञा ? आप जैसे लोगो पर कौन विश्वास करेगा ? महाराज, मदनरेखा किसी भुलावे या प्रलोभन मे आने वाली नही है। इसलिए कृपा करके आप यह समझकर यहाँ से पधार जाइए कि आप रास्ता भूलकर, नीद मे चलकर यहाँ आ पहुँचे हैं। यह महल आपका नही आपके छोटे भाई का है। कलकित होकर जाने की अपेक्षा वीर पुरुष के लिए मर जाना श्रेष्ठ है। इसलिए आप अब भी अपनी दुर्भावना को कुचलकर लाट जाइये।"

"धन्य हो मदनरेखा ! तुम्हारी जैसी पतिव्रता स्त्री सचमुच देवी है। तुम्हारे उपदेश से मेरी आँखे खुल गई। मुझे कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान हो गया। इसके पहले कि अपने महल की ओर लौटूं, तुम्हारा चरण-रज अपने माथे पर लगाकर अपने अपराधो के लिए क्षमा माँगना चाहता हूँ। इसलिए क्षण भर के लिए कपाट खोल दो। मैं तुम्हारा दर्शन करके लौट जाऊँगा।"

"महाराज, इस समय आप कामान्ध हो गये हैं। वासना ने आपके ज्ञान को उसी प्रकार ढँक लिया है जैसे दर्पण को मैल ढँक लेता है और आदमी उसमे अपने स्वरूप को देख नही सकता। आपका कपटजाल यहाँ नही चल सकता। क्या बल प्रयोग करके मेरे सतीत्व का अपहरण करना चाहते है ? दुःख है कि इतना समझाने पर भी आप नही समझ पाये। अपना घर अपने हाथो जलाने के लिए

आप तैयार हो गये है। महाराज, रावण और कीचक जैसे वडे-वडे वीरो का विनाश इसलिए हुआ कि उन्होने पतिव्रता स्त्रियो का शील भग करने का निश्चय किया था। अत आप अपने कुल मे शान्ति चाहते हैं तो लौट जाइये। आप कुशल मानिये कि आपकी दुर्भावना जानकर भी मैंने किसी रक्षक या परिजन को नही पुकारा, आपकी प्रतिष्ठा कायम रखी है। मैं भविष्य के लिए भी विश्वास दिलाती हूँ कि इस घटना का पता किसी को न होगा।"

"मदनरेखा ! तुम मुझसे प्रेम करती हो किन्तु मेरी परीक्षा ले रही हो। इतनी कठिन परीक्षा मे भी मणिरथ कभी असफल नही हो सकता। खडा है भिखारी तुम्हारे दरवाजे पर। भीख लेकर ही लौटेगा।"

चन्द्रमा रजनी की काली अलकों मे पूरी तरह छिप चुका था। तारे मिथुन-लग्न युगल के दरवाजे पर पहरा दे रहे थे। मणिरथ अपने हठ पर अटल रहा। मदनरेखा का जव कोई उपाय नही चला तव वह गुप्त मार्ग से अपनी सास के पास पहुँच गई। सास की अचानक निद्रा खुली। उन्होने पूछा—"वहू तुम इस समय कैसे आई, कही अकेले होने के कारण डर तो नही गई ? क्या वात है, जल्दी वताओ।"

"माँजी ! न मैं डरी हुई हूँ न कोई अप्रिय घटना हुई है। आपके ज्येष्ठ पुत्र भूलकर या और किसी कारण से

मेरे महल में आ गये है। मेरे लिए वे आदरणीय हैं इसलिए उनसे कुछ कहने मे मुझे लज्जा होती है। आप चलकर समझा दे कि वे मेरे महल से जायँ।"

"मणिरथ आधी रात के समय तुम्हारे महल में क्यों आया ? तुम्हारे यहाँ इस प्रकार उसका आना अनुचित है। तुम राजकुल की मर्यादा की रक्षिका हो मदनरेखा ! तुमने इसकी सूचना मुझे देकर कुल की प्रतिष्ठा को बचा लिया है।"

मणिरथ की विकार भरी आँखो पर राजमाता की दृष्टि पडी तो उन्हे समझते देर न लगी कि मदनरेखा के यहाँ किसी दुर्भावना को लेकर ही मणिरथ आया है। क्या स्त्री से पुरुष की ललचाई आँखो की भाषा छिप सकती है ? कदापि नही।

"वत्स ! तुम यहाँ कैसे आये ? क्या मार्ग भूल गये हो ? यह युगवाहु का महल है। रात के समय तुम्हारा यहाँ आना अनुचित है। अपने महल चले जाओ राजकुल की मर्यादा तुम्हारे ही ऊपर टिकी हुई है मणिरथ ! उसे डगमगाने मत दो। तुम वीर हो। जिसके आगे-पीछे दास-दासियाँ हो, उसका अकेले चलना ठीक नही होना।"

"माताजी ! क्या यह युगवाहु का महल है ? मैं भूल गया। आपने मेरे आगमन को कैसे जाना ? क्या युगवाहु की चिन्ता में आपको भी नीद नही आती ?"

"वत्स ! युगवाहु जैसे प्रिय के वियोग से किसको नीद आ सकती है ? तुम्हे ? मदनरेखा को ? मुझे ? सब तो अब तक जग ही रहे हैं। वह तुम्हारा छोटा भाई है। तुम उसके पिता के समान हो। मदनरेखा तुम्हारी कन्या के समान है। इन दोनो की हर प्रकार से रक्षा करना तुम्हारा धर्म है। इसी मे तुम्हारा गौरव है।"

"माँ, यह मेरा हृदय जानता है कि युगबाहु से अलग होकर मैं कितना चिन्तित हूँ। अच्छा मैं चलता हूँ।"

मणिरथ की आँखें आकाश की ओर गईं। उसे लगा, सब तारे उसकी असफलता पर हँस रहे हैं। वह सोचता जा रहा था—'ऐसी रूपसी और बुद्धिमती स्त्री को यदि अपना न बना सका तो मुझे और इस राजपाट को धिक्कार है। मेरा जीवन व्यर्थ है। परन्तु जब तक युगवाहु जीवित है, उसे अपना बना लेना कठिन है। इसलिए अब युगबाहु के जीवन का अन्त कर देने मे ही भला है। उसने फिर आँख उठाई। सारे तारे एक-एक कर उसका उपहास करते नजर आये। धीरे-धीरे कुढ़ता-खीझता वह महल के द्वार तक पहुँच गया।

राजा अव राक्षस वन चुका था। किसी समय जो वन्धु उसे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय था, उसी वन्धु का प्राणान्त कर देने का कुटिल निश्चय उसके हृदय मे उफान लेने लगा। 

: बारह :

आज युवराज युगवाहु शत्रुओं को अपने वश मे करके नगर मे लौट रहे है। महाराजा मणिरथ ने नगर को सजाने की आज्ञा दे दी है। चारो ओर विजय-तोरण बांधे जा रहे हैं। नगर मे प्रसन्नता का वातावरण छाया हुआ है। प्रवेश-द्वार से राज-द्वार तक सभी सामन्त और दास-दासियाँ फूल माला, उपहार आदि लेकर खडे है। महाराज आज विशेष प्रसन्न दिखाई दे रहे है। सभी सभासद स्वागत की तैयारी मे व्यस्त हैं। सबसे आगे प्रशस्ति गान के लिए चारण है। नगर-वधुओं के मगल स्वर से आकाश गुजरित हो रहा है। सुदर्शनपुर की शोभा आज इन्द्रपुरी को भी मात कर रही है। मदोन्मत्त हाथियो पर सवार सामन्त अपनी-अपनी तलवारे, भाले सम्भाले जनता की अपार भीड को धीरज रखने का सकेत कर रहे हैं। विजय-गान के लिए बडे-बडे गायकों को आमन्त्रित किया गया है।

महारानी मजुला अपने हाथ से मदनरेखा को सजा रही है। उसके सौन्दर्य मे आज एक अद्भुत आभा दिखाई दे रही है। अभिजात नम्रता से उसकी गर्दन झुकती जा रही है। युवराज के आते ही मदनरेखा उन्हे विजय-तिलक करेगी और नगर की स्त्रियाँ उनके ऊपर फूल बरसायेगी।

गणिकाध्यक्षा "वसन्तसेना" को विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया है। वह आमन्त्रित राजाओ और विदेशी अतिथियों के मनोरजन का प्रवन्ध करेगी। प्रकृति भी मुग्धा-नायिका की भाँति अपने हाव-भाव दिखा रही है।

युवराज के नगर के निकट आने का कोलाहल सुनाई पड़ रहा है। विजय-घोष और घोडो की टाप से उडी धूल से, दूर से उनके आने की सूचना मिल रही है। नगर रक्षक सबको सावधान कर रहे हैं। महाराज मणिरथ अपने सभासदों के साथ अगवानी के लिए पधार रहे हैं। उनके साथ सशस्त्र सैनिक और चमरधारिणी तथा ताम्बूलवाहिनी भी है। देखते ही देखते युगवाहु और मणिरथ का मिलन हो गया। रथ से उतरकर मणिरथ ने युवराज को अपनी छाती से लगा लिया। दोनो ने परस्पर कुशल-प्रश्न किये। युवराज और मणिरथ नगर-निवासियो का स्वागत स्वीकार करने के लिए आने लगे। जनता ने फूलो की वर्षा की। युवराज्ञी मदनरेखा ने विजय-तिलक किया। युवराज ने राजमाता तथा महारानी मंजुला की चरण-रज लेकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके वाद युवराज अभ्यागत राजाओ और सामन्तो से मिले तथा उनके उपहार स्वीकार किये। कारागृह के वहुत से वन्दी मुक्त कर दिये गये। युवराज ने अपने हाथ से दास-दासियो को पुरस्कार देकर विदा किया। महाराजा मणिरथ ने युवराज को अपने सीने से लगा लिया।

"भाई ! तुमने जिस कुशलता से शत्रुओं को वश मे कर लिया उसका समाचार सुनकर मेरा सीना गर्व से फूल गया। प्रवास मे तुमने किस प्रकार समय बिताया, विस्तार से सुनाओ। मैं तो यहाँ तुम्हारी चिन्ता मे राज-काज, हँसी-खुशी सब भूल गया था। जब से तुम आँखो से ओझल हुए, एक-एक पल युग की तरह बीत रहा था। जीवन इतना लम्बा लगने लगा कि एक-एक क्षण काटना मुश्किल हो गया था। आज तुम्हें देखकर मेरी सारी चिन्ताएँ दूर हो गईं। देर मत करो, जल्दी-जल्दी प्रवास के सस्मरण सुनाओ।"

"भ्राता ! आपकी कृपा से मैं यात्रा में बहुत कुशल-पूर्वक रहा। आपके प्रताप से सब विद्रोही शरण मे आये और विना युद्ध किये ही अधीन हो गये। बिना श्रम और क्षति के सीमा के सम्बन्ध मे आपकी जो चिन्ता थी वह मिट गई।"

"भाई ! तुमने बड़े संक्षेप मे यह बात कह दी। ऐसा लगता है, प्रवास का वृत्तान्त सुनाने मे तुम्हे सकोच हो रहा है। सामन्त चन्द्रसेन ! आप तो युवराज के साथ गये थे। इन्हें अपने पराक्रम का वर्णन करने मे सकोच हो रहा है। ठीक भी है, वीर कभी अपने मुख से अपनी वीरता का बखान नही करता। इसलिए आप सारे वृत्तान्त को विस्तार से सुनाइए। ध्यान रहे, एक भी बात छूटने न

पाये। भविष्य मे इसी नीति-कुशल भाई पर राज्य का सारा भार आने वाला है।"

"महाराज! युवराज की वाणी मे अद्भुत शक्ति है। इन्होने विद्रोहियो को प्रजा की रक्षा का आदेश दिया और प्रजा के लिए राजभक्त रहने, उद्योग करने एव नीति धर्म का पालन करने पर वल दिया। युवराज की वाणी का जादू-सा असर हुआ और देखते ही देखते सारी प्रजा ने एक स्वर से युवराज के आदेशों को शिरोधार्य कर लिया और इनके प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की।"

"सामन्त चन्द्रसेन! युवराज पराक्रमी होने के साथ-साथ नीतिकुशल हैं। अपनी वुद्धिमत्ता से इन्होने सुदर्शन-पुर और स्वय मेरा गौरव वढाया है। मेरी हार्दिक मनो-कामना है कि हमारे वन्धु-स्नेह मे कभी अन्तर न आने पाये। मैं जिस भाई को आज प्राणो से भी अधिक चाहता हूँ, भविष्य मे भी उसे ऐमे ही चाहता रहूँ। भाई तुम्हारे स्वागत मे गणिकाध्यक्षा वसन्तसेना ने आमोद-प्रमोद का प्रवन्ध किया है, सभी अतिथि और सामन्त चाहते हैं कि तुम उसमे सम्मिलित होकर सवको मुदित करो।"

"भ्राता! यह आपकी विजय है। इसलिए आप ही इस अवसर को गौरव प्रदान कीजिए।"

"हाँ, प्रवास के वाद आये हो, मैं तुम्हारा सकेत समझ गया।"

युगबाहु भाई का अभिवादन करके अपने महल को चला गया। मदनरेखा ने आनन्द-विभोर होकर अपने विजयी पति का स्वागत किया—"प्राणेश! आज मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ, आपने राज्य का यश फैलाया। यह जानने की उत्सुकता है कि प्रवास का समय कैसे बीता?"

"प्रिये! तुम्हारा स्नेह मुझे हर निर्णय के समय मर्यादित रखता था। प्रस्थान के समय तुमने मुझे जो परामर्श दिये थे, उन्ही के अनुसार मैंने शत्रुओं और प्रजा को अपने अनुकूल बनाया।"

"प्राणनाथ! मैं आप जैसे नीतिकुशल पुरुष को क्या परामर्श दे सकती हूँ। यह तो आपकी महानता है कि मुझ जैसी अल्प बुद्धि वाली नारी को भी आपने यह गौरव प्रदान किया।"

"प्रिये! ऐसा मत कहो। सचमुच अब तक मैंने जो कुछ किया है, सब तुम्हारी ही प्रेरणा से। तुम्हारे जैसे जीवन-साथी की प्रेरणा से बड़े से बड़ा कार्य भी सरल हो जाता है। मैं जाते ही शत्रुओ पर आक्रमण कर सकता था, साम, दाम, दण्ड, भेद का प्रयोग कर सकता था, किन्तु तुम्हारी मूर्ति मर्यादा का सन्देश लेकर सदा मेरे सामने खड़ी हो जाती थी और मैं अपना अगला निर्णय उसी के अनुसार करता था।"

"जो कुछ भी हो प्राणनाथ, आपने प्रजा की भलाई और

राज्य के गौरव के लिए चाहे जिसकी प्रेरणा से यह किया, मुझे यह सब देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपका स्नेह ही मेरा जीवन है। मेरे प्राणो मे जो कुछ है आपका है। बस, आप सकुशल रहकर प्रजा का पालन करे, यही शुभ-कामना है।"

"मदनरेखा! प्राणप्रिये!! तुम धन्य हो और तुम्हें पाकर मैं भाग्यवान हूँ।"



: तेरह :

वसन्त की सुहावनी ऋतु थी। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु के झोको से रोम-रोम स्फुरित हो रहा था। भाँति-भाँति के किसलय और पुष्प, लताओ और वृक्षों से ऐसे लग रहे थे मानो नवयौवना प्रकृति के सस्मित मुख पर किसी ने रग-बिरगे गुलाल मल दिये हों। कही कदम्ब की मादकता कामनियो की अंग-यष्टि को स्फुरित-सा कर जाती थी, तो कही अशोक और पलाश के वृक्ष पुरुषो के मन मे कौतूहल भर देते थे। एकाएक कोकिला के स्वर से प्रेम-राग मुखरित हो उठता था और विरहिणी नायिकाओं के अग-अग मे विरहाग्नि प्रदीप्त हो जाती थी। पीली-पीली सरसो, नीली और कुसुमी रग के मटर के फूलो से शस्य-श्यामला धरती सुहावनी लग रही थी। फूलो का रस पीकर बौराये हुए भौरे तितलियो को छेड रहे थे। सारा वातावरण मादकता का साम्राज्य बन गया था। वसन्त के इस मनभावन अवसर पर सुदर्शनपुर मे वसन्तोत्सव मनाने की परम्परा थी।

राजा-प्रजा अपने धन, पद, वय आदि सब का भेद-भाव भूलकर यह उत्सव मनाते थे। नाचते थे, गाते थे, गले मिलते थे और अपने मन का मेल-जोल के एक ही रग मे

रंग डालते थे। इस सुरम्य वातावरण में गुलाल मले जाते थे। पिचकारी के रग से सबको रंगते हुए स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के जीवन मे सजीवनी घोल देते थे। प्रौढ और वृद्ध आत्माओ मे भी यौवन हिलोरे लेने लगता था। परम्परा और नियम के अनुसार नगर की प्रधान गणिकाध्यक्षा पर सभी लोग अभिषेक-जल छिडका करते थे। आज इस महोत्सव की नायिका वसन्तसेना थी। राज सरोवर से कमल-पत्रो मे जल लाकर वसन्तसेना का अभिनन्दन किया गया। महाराजा मणिरथ ने गणिकाध्यक्षा को स्वर्णनूपुर और अमरावती वीणा भेंट की। स्वर्णनूपुर और वीणा लेकर वसन्तसेना ने वसन्तराग पर नृत्य किया। सामन्तो ने अपने-अपने उपहार भेट किये। वसन्तसेना ने महाराज मणिरथ को अमृत कलश और युवराज युगवाहु को सोमपात्र भेटकर कामोद राग की गति पर वन्दना-नृत्य दिखाया। करतल ध्वनि से सारा मण्डप गूंज उठा।

दासियो ने महारानी मजुला को हीरक केयूर और युवराज्ञी मदनरेखा को मुक्ताहार पहनाया। दानो ने दासियो को पुरस्कार दिये। प्रमदा तीर्थ से लाये गये जल से राजमहिषी का अभिषेक किया गया। जिस स्वर्ण कलश से महारानी मजुला के ऊपर जल गिराया गया उसमे रत्न भरकर सभी दास-दासियों मे वितरित किये गये। युवराज्ञी मदनरेखा का अभिषेक रजत कलश से हुआ और उनके मुकुट मे मयूरपंख लगाये गये। ताम्बूलवाहिनी ने

सबको इत्र और ताम्बूल दिया। वसन्तसेना राजमहिषी और युवराज्ञी का अभिवादन करने आई। राग-भैरव पर ठुमरी के पश्चात् सहयोगी गणिकाओं ने रास-नृत्य किया। एक-दूसरे की बॉह पकडकर बनाये गये वृत्ताकार घेरे में राज-महिषी और युवराज्ञी भी थीं। नृत्य के पश्चात् भुज-बन्धन में गणिकाओ ने दोनो को बाँध लिया। बन्धन से निकलने का शुल्क था--मोतियो का हार।

कुमारी सुमनाक्षरा मगल-कलश लेकर आई। कलश पूजन के लिए महाराजा मणिरथ और युवराज युगबाहु सपत्नीक आये। स्वस्ति-गान और विजय-गान के बाद कुसुमायुध नृत्य का आयोजन हुआ। कामदेव की भूमिका वसन्तसेना ने निभाई। एक क्षण को ऐसा लगा कि सचमुच कामदेव सबके आगे नाच रहे है। गणिकाओ ने आसव वितरण किया। वसन्तसेना ने महाराजा मणिरथ और युवराज युगबाहु को अपने हाथो से आसव दी। सबको कुमकुम तिलक लगाया गया। इस प्रकार वसन्तोत्सव समाप्त हुआ। सब कामदेव को अपने मन मे आरोपित कर अपने-अपने घर गये। महाराजा मणिरथ भी राजमहिषी मजुला के साथ नगर को गये किन्तु युगबाहु ने वन-निवास की इच्छा से वनस्थली मे ही निवास करने का मन्तव्य प्रकट किया।

युगबाहु ने वन निवास का प्रस्ताव मदनरेखा के सामने

रखा—"प्रिये ! वसन्तराग पवन में घुलकर चारों ओर गुजरित हो रहा है। पक्षियों का कलरव मन को रोक रहा है। क्यों न कुछ दिन इस वातावरण मे निवास किया जाय ?"

"नाथ ! आप जैसे स्वामी के मन मे आया हुआ विचार कितना सुखदायी हो सकता है, यह मैं जानती हूँ। वातावरण कितना मोहक लग रहा है ? क्या राजमहल का कृत्रिम सौन्दर्य इन वन-लताओ की बरावरी कर सकता है ? राजमहल मे हम बनावटी फूल-पत्ते और पशु-पक्षियो के चित्र देखते हैं, यहाँ तो सब कुछ सहज और स्वाभाविक है। कितना निर्द्वन्द्व स्थान है ? न यहाँ राज्य की चिन्ता, न कलह, न द्वेष, सब कुछ स्वाभाविक। यह वातावरण अपने आप मे आनन्द और सन्तोष का रस पीने वाला है। नगर मे ऐसा वातावरण कैसे मिल सकता है ? स्वास्थ्य की दृष्टि से भी वन-निवास सुखदायी होता है। इसलिए इस सुखद वातावरण को छोड़कर जाने को मन नही करता।"

"प्रिये ! सारा का सारा वातावरण तुम्हारे कारण मन को मोह रहा है। यदि तुम्हारा साथ न होता तो कोयल का कुहुकना विरह और पीडा देता, पलाश जब खिलते तो लगता, अगारे दहक रहे है। पवन जब चलता तो विरहाग्नि से शरीर झुलसने लगता किन्तु जब तुम हो तब इन सबका अर्थ बदल गया है। तुमने ठीक ही कहा

प्रिये, जहाँ बनावटीपन नही, सहजरूपता है, वही सुख है। यहाँ के निवासी चाहे जमीन पर सोएँ, पर्यंक और कोमल बिछौनो की चाह इन्हे कष्ट नही देती। झरनों का जल पीकर और कन्द-मूल खाकर सन्यासी की भाँति ये विचरण करते हैं। राग, द्वेष, कलह, कपट इनको छू तक नही पाया है। ये सच्चे संन्यासी है। इनके मुख पर चिन्ता की रेखाये देखने को नही मिलेगी, न इन्हे राज्य चाहिए न अधिकार, न यहाँ विद्रोह है न सन्धि, इन्हे चाह-चिन्ता की परवाह ही नही, ये स्वतन्त्र हैं, मस्ती है इनके जीवन मे। यही वास्तविक जीवन है मदनरेखा ! इनके सम्पर्क मे रहकर हम अपनी सारी चिन्ताएँ भूल जायेंगे। ये प्रकृति के साथी हैं, इनके लिए वैद्य-हकीम की कोई जरूरत नही। अपना शरीर ही इनका धन है, साथी है, सखा है। देखा है तुमने इनका पारस्परिक प्रेम।"

"देखा है प्राणनाथ ! कुछ किरात-किशोरियाँ गुजा की माला पहने खिलखिला रही थी। एक किशोरी को बुलाकर जब मैंने एक स्वर्ण कगन देना चाहा तो उसने वह हाथ मे लेकर पुन लौटा दिया और कहा—'ये बड़े कठोर है, हमारी कलाई छिल जायगी। हमे तो फूलो का कगन पहनने की आदत है। हम ईंट-पत्थर अपने गले मे नही बाँधते। सुना है जो लोग अपनी छाती पर हमेशा हीरे-मोती के पत्थर लादे रहते हैं उनका हृदय कठोर हो जाता है। वे दूसरो के सुख-दु:ख की परवाह नही करते। हमारा

हृदय तो फूलों-सा कोमल है और यदि मैंने यह कंगन ले लिया तो हमारे वापू डाँटेंगे। हमे चोर कहेगे। हम केवल चोर-चोर का खेल खेलते हैं, चोरी नही करते। अच्छा, वताइए आपने यह कगन कहाँ से चुराया है?' मैं उस भोली किशोरी की वात पर दग रह गई। वास्तव मे हम पत्थर के आभूपण पहनते-पहनते पत्थर-दिल हो गये है, और हम विना चोरी के, दूसरो के भाग्य के साथ छल किये विना ये सव हीरे-जवाहरात कहाँ से पा सकते है? हम विना परिश्रम किये सारी सम्पत्ति के मालिक वन वैठते है और जो परिश्रम करते हैं वे आँसू पीकर सो जाते हैं। यह उनके श्रम की चोरी नही तो और क्या है? हम सवका सोचने-समझने का तौर-तरीका विलकुल पत्थर का है। यदि फूलो से हमने कोमलता सीखी होती तो उस किरात-किशोरी के सवालो का जवाव देती, लेकिन हम तो हर वात को पत्थर से दवा देने के आदी हैं। ये देवता हैं युवराज! यदि देवता कही मिलेंगे तो गरीवो की कुटिया मे। मन्दिरों मे सोने-मोती से जडी मूर्तियाँ तो धनाधिकारियो की वपौती हैं। वहाँ देवता कैसे रह सकता है? पुजारी कहता है भोले-भाले भील और किरात यदि मन्दिर मे चले गये तो वह अपवित्र हो जायगा। क्या उसने इनके देवत्व को पहचाना है? पत्थर की पूजा करते-करते वे भी पत्थर हो गये हैं। जो देवता है, क्या वह मनुष्य और मनुष्य मे भेद करता है? अगर ससार के सभी मनुष्य समान है तो ये

त्याज्य क्यों हैं ? क्या इनका अपमान करके हम ईश्वर का अपमान नही करते ? प्राणनाथ ! आपने सच्चा स्वर्ग चुना है, निवास के लिए।"

"मदनरेखा ! राज ऐश्वर्य मे पलने पर भी तुम्हारा हृदय कितना कोमल है, तुम देवी हो। ठीक है, हम इन देवताओं की छत्रछाया मे ही रहेगे। हमारा जीवन धन्य हो जायेगा।"



: चौदह :

युगवाहु के वाम-अक मे अप्सरा-सी सजी हुई मदनरेखा को देखकर मणिरथ के सीने पर साँप लोटने लगा। भीतर ही भीतर उसके मन मे जहर फैलने लगा—'आज यदि युद्ध मे युगबाहु मार दिया गया होता तो मदनरेखा को अपने वाम-भाग मे लेकर बैठने का सुअवसर मुझे मिलता। सुरा की मादकता मे मदनरेखा का यह रूप-यौवन मेरे लिए स्वर्ग का सुख होता। वंसन्तसेना के हाथ से जब सुरा वितरण हो रहा था, उसी समय उसमे कोई विष मिलाकर युगवाहु को दिया जा सकता था, किन्तु मैं अवसर चूक गया। असिधारा नृत्य मे तलवार युगवाहु के गले पर गिर सकती थी, किन्तु गणिका मेरा सकेत न समझ सकी। कोई बात नही, आज युगबाहु मदनरेखा के साथ वन-निवास कर रहा है। यही अवसर है उस नाग से मणि छीनकर ले आने का, और विना फन कुचले वह मणि को छोडने वाला तो है नही। ठीक है आज ही उसका काम तमाम किये देता हूँ। फिर मदनरेखा के यौवन का अधिकारी मैं बन जाऊँगा। उसके अधरो से अमृत पीकर मेरा जीवन सार्थक हो जायगा।' सोचते-सोचते मणिरथ ने अपने अगरक्षक को बुलाया—

"महासिह ! रात्रि के दूसरे प्रहर मे मेरे लिए एक सबसे तेज घोडा और विष मे बुझी एक तलवार का प्रबन्ध कर दो। मुझे गुप्त रूप से आज सारे नगर को देखना है। ध्यान रखना, किसी प्रकार का विलम्ब न होने पाये।"

"किन्तु महाराज, आज तो रात्रि के दूसरे प्रहर मे मदनोत्सव का आयोजन है, आप इस पर्व के नायक होगे। यदि आप ......।"

"कुछ नही महासिह, इस समय मुझे कोई उत्सव अच्छा नही लगता। सबको समाचार दे दो कि महाराज का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण आज नगर मे कोई उत्सव नही मनाया जायगा। यह उत्सव कल बड़ी धूमधाम से मनाया जायेगा।"

"किन्तु यह सुदर्शनपुर की महान् परम्परा है महाराज, इसे टाला कैसे जा सकता है ?"

"परम्परा का कोई प्रश्न नही। जब परम्परा का निर्वाह करने वाला ही कह रहा है तो ? तुम अपना काम जल्दी करो।"

"जैसी आज्ञा महाराज।"

अनेक सकल्प-विकल्प अपने मन मे लिए मणिरथ युगबाहु के निवास की ओर चला। रात अँधेरी थी। मणिरथ सोचता जा रहा था—"कुछ अगरक्षको के भरोसे

युगबाहु सो रहा होगा। मुझे जाते देखकर अंगरक्षक भी मना नही कर सकते। यह तलवार उसके सिर पर गिरते ही वह परलोक चला जायेगा और मैं मदनरेखा को लेकर लौट आऊँगा।" वह घोड़े को बडी तेजी से बढाये जा रहा था। इतने मे आवाज आई—"घोड़ा रोकिये ! कौन हैं आप ? रुक जाइए। आगे नही जा सकते।"

"तुम लोग जानते नही मै कौन हूं ? मेरा नमक खाकर जीने वाले मुझे ही भूलने लगे ? मैं मणिरथ हूँ, युगबाहु का वड़ा भाई।"

"किन्तु इस ममय आप मात्र एक अजनवी हैं, इसलिए युवराज की आज्ञा के विना हम आपको आगे नही वढने देगे।"

"मैं राजा हूँ, सब जगह जा सकता हूँ। अपने भाई से मिलने के लिए जाने पर मुझे तुम कैसे रोक सकते हो ? सावधान, यदि अनाधिकार चेष्टा की तो राजदण्ड भोगना पड़ेगा।"

"दण्ड की हमे कोई परवाह नही। हम इस समय वही करेगे जो रक्षा की दृष्टि से उचित होगा। यदि आपको आना ही था तो अगरक्षको को साथ लेकर क्यो नही आये ? क्या आपके आने की सूचना लेकर पहले कोई दूत नही आ सकता था ? आपको भाई की इतनी ही चिन्ता थी तो वन-निवास करने ही क्यो दिया ? आप यही ठहरिए,

एक आदमी जाकर युवराज को आपके आगमन की सूचना दे आता है।"

"ठीक है, जल्दी करो। अभी मुझे महल को वापिस लौटना भी है।"

एक अगरक्षक ने जाकर मणिरथ के आगमन की सूचना दी—"युवराज ! आपसे मिलने के लिए महाराज मणिरथ आये हैं।

"ठहरो ! युवराज्ञी से पूछकर बताता हूँ।"

"मदनरेखा !"

"हाँ, कहिए अभी मैं स्वप्न देख रही थी। बीच ही मे आपने जगा दिया।"

"अच्छा, तो पहले अपना स्वप्न बताओ फिर मैं अपनी बात कहूँगा।"

"प्राणनाथ ! मैं देख रही थी कि मैं अपने हाथ मे अपना कंगन लेकर प्रसन्न हो रही हूँ। इतने मे एक चील आकर उसे झपट ले जाती है। कगन पाने के लिए मैं उसके पीछे भागती हूँ, वह आकाश मे उडी जा रही है जगलो और पर्वतो से होकर और मैं भूखी-प्यासी उसको देखते हुए भागती जा रही हूँ। अभी भाग ही रही थी कि आपने जगा दिया। नाथ ! यह स्वप्न मेरे मन मे नाना प्रकार की आशकाएँ उत्पन्न कर रहा है।"

"कोई वात नही, तुम्हे अपना सुहाग वहुत प्रिय है न। इसीलिए चाहती हो कि उसे कोई तुमसे छीनकर न ले जाये। विश्वास रखो सव ठीक हो जायगा। अच्छा, एक वात वताओ, बड़े भाई आये हैं, विरह मे नीद नही आई होगी। हमारा कुशल क्षेम जानने के लिए आ गये होगे। क्या यहाँ बुला लूं?"

"नाथ! आपके भाई इस समय अकेले पधारे है, यह जानकर मेरे मन मे शका हो रही है। राजा का इस समय रात मे विना किसी अगरक्षक या पूर्व सूचना के आना मर्यादा के विरुद्ध है। इसलिए आप इस समय उनको यहाँ मत बुलाइए। लगता है उनके मन मे कोई न कोई दुर्भावना है।"

"मदनरेखा, इतना पुण्यात्मा भाई क्या मन में किसी प्रकार की दुर्भावना अपने ऐसे छोटे भाई के लिए रख सकता है जो उसे प्राणो से भी अधिक प्यारा हो।"

"प्राणनाथ! जव मनुष्य के मन मे कोई विकार उत्पन्न हो जाता है तो वह तमोगुण के वशीभूत होकर सब कुछ करणीय-अकरणीय कर गुजरता है। एक रात जव आप युद्ध-भूमि मे थे, वे मेरा शोल भग करने की भावना से आधी रात को महल के दरवाजे पर आकर खड़े हो गये थे। लाख समझाने पर भी जव नही माने तो उन्हें हटाने के लिए मुझे सासजी का सहारा लेना पडा। उनके मन मे मेरे प्रति भारी विकार भाव उत्पन्न हो गया है

और हो सकता है मुझे पाने मे वे आपको बाधक समझते हो।"

"जिस भाई को मै पिता तुल्य मानता था, वह इतना कुटिल और पापी है। तुमने यह घटना आज तक मुझसे क्यो छिपायी ? यदि मुझे पहले ज्ञात होता तो मैं तुम्हारे ऊपर किये गये इस अन्याय का बदला अवश्य लेता और बता देता कि युगबाहु वीर है, कायर नही। अब मैं समझा कि भाई ने मेरे ऊपर जो स्नेह प्रकट किया था वह केवल छल था। अपनी वासना की पूर्ति के लिए उसने मुझे युद्ध-भूमि मे भेज दिया था और जब मैं वहाँ से भी सकुशल लौट आया तो अब किसी दूसरे उपाय से तुम्हे पाना चाहता है। किन्तु मदनरेखा, यह भी तो हो सकता है वह भावना क्षणिक हो।"

"प्राणनाथ! और सभी दुर्भावनाये जल्दी मिट सकती है किन्तु काम-विकार जल्दी शान्त होने वाला नही है। आपको नही मालूम, महारानी मजुला से वे आजकल बात तक नही करते। क्या इसका कारण उनका किसी दूसरी स्त्री पर रीझ जाना नही है ?"

"कुछ भी हो मदनरेखा, स्त्रियों के मन मे सन्देह और भय का आ जाना स्वाभाविक है और यही कारण है कि सन्देह और भय मे वे बड़े से बडा अनर्थ कर डालती है। जिस भाई ने मुझे अपना उत्तराधिकारी बनाया, जिसकी

सेवा में मैंने अपना तन-मन-धन लगा दिया यदि वह मेरे प्राण भी ले ले तो भी मुझे कोई दु ख नही। मेरी अनुपस्थिति में तुम्हें अपने धर्म पर अटल रहना होगा।"

"मेरा मन कहता है प्राणनाथ, आप जान-बूझकर खतरा मोल मत लीजिए। यही मे समाचार भेज दीजिए कि हम सकुशल हैं। बड़े भाई महल को लौट जायं। मैं आपके चरणो पडती हूँ, आप मान जाइये।"

"मदनरेखा! तुम स्त्री हो, तुम कायर हो सकती हो, एक क्षत्रिय-पुत्र कायर नही हो सकता। उसे हर खतरे का सामना वीरता से करना होता है। तुम ओट मे चली जाओ। मैं बडे भाई को बुलवा रहा हूँ।"

युवराज का सन्देश लेकर वाहक पहुँचा। अंगरक्षक ने कहा—"महाराज! आपको रोकने का जो अपराध हो गया उसे क्षमा करे। युवराज ने आपसे सहर्ष पधारने की प्रार्थना की है।"

"तुम लोगो ने मुझे रोककर अपने कठिन कर्तव्य का पालन किया है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि तुम लोग इतनी तत्परता से नियमो का पालन करते हुए युवराज की रक्षा मे तत्पर हो। इसलिए खेद प्रकट करने या क्षमा माँगने की आवश्यकता नही।" यह कहते हुए मणिरथ ने अपना घोडा तेजी से बढाया। द्वार पर सत्कार-सामग्री लेकर युगबाहु अपने सहोदर की प्रतीक्षा कर रहा था। हाथ मे नगी तलवार लेकर मणिरथ घोड़े से उतरा। युगबाहु

ने अभिवादन किया—"महाराज ! आपने इस समय अकेले आने का कष्ट कैसे किया ? दास के लिए क्या आज्ञा है ?"

"भाई ! तुम मुझे प्राणों से भी प्रिय हो। मैं तुम्हें अपने प्राणो से भी अधिक रक्षणीय मानता हूँ। जब मैंने यह सुना कि तुमने वन-निवास का निर्णय किया है, मुझे आश्चर्य हुआ। तुम राज्य के उत्तराधिकारी युवराज हो। अनेक लोग तुमसे द्रोह करते है और उन लोगो से तो विशेष भय है जिन्हे तुमने अभी कुछ दिन पहले ही अपने अधीन किया है। क्षत्रिय किसी की अधीनता तभी स्वीकार करता है भाई जब वह बिलकुल विवश हो जाता है। फिर भी उसके भीतर प्रतिशोध की आग सुलगती रहती है। वे पुन. स्वतन्त्र होने के उपाय सोचते रहते है। वे लोग ऐसा अवसर ढूंढ रहे होगे कि कब ऐसा अवसर आये कि वैर का बदला लिया जाय। इसलिए मैं तुमसे कहने आया हूँ कि रात को इस प्रकार रहना ठीक नही। राजाओ या राज-कुलीनों को युद्ध के सिवा शेष समय मे किले से बाहर नही रहना चाहिए। किले इसलिए बनाये जाते हैं कि यदि अचानक शत्रु हमला भी कर दे तो वह किले के भीतर नही घुस सकता। तुम्हारे रहने के लिए किला है फिर इस अरक्षित स्थान पर क्यो रह रहे हो ? मैं यह नंगी तलवार इसलिए लाया हूँ कि कही किसी शत्रु का सामना करना पड जाय तो अपनी रक्षा कर सकूं।"

मणिरथ की मुखाकृति से युगवाहु भाँप गया कि मदनरेखा का कथन ठीक है। अव वडा भाई अपने छोटे भाई के प्रति स्नेह नही वैर रखने लगा है। युगवाहु ने कहा—"भाई! यदि दुर्ग से वाहर राजा की रक्षा नही हो सकती तो इतनी रात गये दुर्ग के वाहर आप क्यों आये ?"

"मैं अनुभवी और वयस्क हूँ युवराज! मुझे भली-भाँति आत्म-रक्षा के उपाय ज्ञात हैं। तुम्हारी अपेक्षा मेरे अन्दर वल और साहस भी अधिक है। मेरी तरह तुम विपम परिस्थितियो का सामना नही कर सकते। इसलिए मुझे अपनी नही तुम्हारी चिन्ता है।"

"भाई! आप भूल रहे हैं। आप वलवान और साहसी हैं तो क्या मैं वलहीन और कायर हूँ? क्या युवा होने पर भी मेरे अन्दर वल और साहस की कमी है? मुझे किसी का भय नही। मैं अपने भुजवल से शत्रु का सामना कर सकता हूँ। इसलिए मेरे सम्वन्ध मे आप अनावश्यक चिन्ता मत कीजिए। अपने महल मे जाइए और सुख की नीद सो जाइए।"

युगवाहु के उत्तर मे रूखापन था। रौद्रता मे विनय का लोप हो गया था। मणिरथ ने विवाद को आगे वढ़ाना उचित न समझा। उसने युगवाहु से कहा—"भाई! अव मैं तुमसे वल और वुद्धि दोनो मे हार गया हूँ। मैंने

निरर्थक चिन्ता की। सिह-कुल मे सिंह ही उत्पन्न होते हैं, गीदड नही। वहुत जोर से प्यास लगी है, मार्ग से थक भी गया हूँ इसलिए थोडा पानी पिला दो। फिर मैं किले को लौट जाऊँगा।"

अतिथि की प्यास बुझाना अपना धर्म है। यदि अतिथि के मन मे ईर्ष्या की कोई आग भी जल रही हो तो भी उसे बिना पानी पिलाये भेजना उचित नही होता। इसलिए नि शंक भाव से युगबाहु मणिरथ को पानी पिलाने के लिए उठा, लेकिन वह सुराही से पानी निकालने के लिए झुका ही था कि मणिरथ ने उसके सिर पर तलवार का वार कर दिया। तलवार पडते ही युगबाहु के सिर से रक्त की धारा वह निकली। तलवार का विष धीरे-धीरे युगबाहु के शरीर मे फैलने लगा और वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पडा। उसके मुँह से कुछ अस्पष्ट स्वर निकला—"अरे नराधम! अपने छोटे निहत्थे भाई के साथ ऐसा विश्वासघात! यदि तुम वीर होते तो मेरे हाथ मे भी तलवार देकर अपनी वीरता दिखाते।"

मणिरथ खून से लथपथ तलवार लेकर घोडे पर बैठकर भाग निकला। शिविर मे हाहाकार मच गया। मणिरथ का पीछा करके पहरेदारो ने उसे पकड लिया। रक्षको ने अपनी तलवारे निकाल ली और प्रलय का एक भयानक दृश्य अनेक तलवारो के मध्य होने की आशका से वातावरण काँपने लगा। □

: पन्द्रह :

मदनरेखा ने जव पति को आहत अवस्था में देखा तो वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडी। दूसरी ओर शत्रु से वदला लेने के लिए युगवाहु वार-वार उठने का प्रयत्न कर रहा था, परन्तु उठ पाने मे अपने को असमर्थ पाकर बुदबुदा रहा था—'छली मणिरथ, यदि मेरे हाथ मे तलवार होती तो तुम्हे जीवित वापस नही जाने देता।' फिर उसने मदनरेखा को पुकारा—"मदनरेखा ! तुमने मुझमे कहा था न कि उस पापी से मत मिलो, उसकी भावना विकारपूर्ण है, इसलिए किसी अनर्थ की सम्भावना है। तुम्हारा कहना न मानने का फल मैं भोग रहा हूँ, मदनरेखा ! पानी ''पा'' '''।" होश मे आकर मदनरेखा पानी लेकर दौडी। उसने पानी पिलाकर पति का सिर अपनी गोद में रख लिया। युगवाहु कह रहा था—"मदन-रेखा, अव तुम्हे अनाथ जानकर वह तुम्हारा सतीत्व लूटने के लिए नाना प्रकार के भय, भेद दिखायेगा। तुम्हे न मालूम कैसे-कैसे अत्याचार सहने पडेगे। अपना सतीत्व वचाने के लिए तुम जितनाही प्रयत्न करोगी, वह कामान्ध तुम्हें उतना ही अधिक कष्ट देगा। जव उसने अपने सहोदर भाई के साथ ऐसा व्यवहार किया तो तुम्हारे साथ न जाने

कैसी-कैसी क्रूरता करेगा ? लेकिन मन छोटा मत करना मदनरेखा ! चन्द्रयश आज चाहे छोटा हो, लेकिन बडा होने पर अपने माता-पिता पर किये गये अत्याचार का बदला अवश्य लेगा। वह वीर है, तुम्हारा अपमान कभी सहन नही कर सकता।" युगबाहु क्रोध तथा विष की पीडा से तडपते हुए बडबडा रहा था—"यदि वह भाग न जाता तो मैं उसे जीवित नही लौटने देता।"

मदनरेखा के भीतर एक चेतना जाग्रत हुई—'पति अब मरणासन्न है। यदि क्रोध और मोह की अवस्था मे उन्होने प्राण छोड दिये तो उनका परलोक विगड जायगा। इस समय मुझे उनकी सुगति के लिए कोई उपाय करना चाहिए। राग-द्वेष मे यदि उनके जीवन का अन्त हो गया तो अगले भव मे न जाने कैसी-कैसी यातनाएँ उन्हे भोगनी पडेगी। सहधर्मिणी होने के नाते मुझे ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे पति का परलोक न बिगडे क्योकि मनुष्य जिस भावना से प्राण त्यागता है, उसी की पूर्ति के लिए उसे अनेक जन्मो में भटकना पड़ता है। वह अनेक योनियो मे बार-बार जन्म लेकर यातनाएँ सहता रहता है।' यह विचार कर अपने मन को दृढ करके मदनरेखा ने मृत्यु-शय्या पर पड़े युगबाहु को धर्मोपदेश सुनाना चाहा किन्तु कोलाहल के मारे उसका स्वर पति के कानो तक पहुँच पाना असम्भव था। उसने सोचा—"पति तो चन्द क्षणों के मेहमान है। यदि जेठ को भी हत्या कर दी गई तो

हत्या के वदले हत्या करने से क्या लाभ ? अतः विवेक-बुद्धि से उसने पहरेदारो और सामन्तो से कहा—"सावधान ! यदि तुम लोग अपने स्वामी का हित चाहते हो तो घातक को मार डालने या पकडने से क्या लाभ हो सकता है ? इसलिए जो अपराध राजा ने किया है वह तुम लोग मत करो। यदि तुमने इनकी हत्या भी कर दी तो मेरे पति के प्राण तो लौटने वाले हैं नही ? अत. तुम लोग राजा को मुक्त कर दो और कोलाहल वन्द करो। वैर कभी भी वैर से शान्त नही होता। उसके लिए प्रेम और विवेक चाहिए, धर्म की शरण चाहिए और चाहिए न्याय की तुला ··· ।"

युगवाहु को मदनरेखा ने धर्मोपदेश सुनाना प्रारम्भ किया—"प्राणनाथ ! यह समय सासारिक माया-मोह के जाल मे फँसकर तडपने का नही है। अपने चित्त से राग-द्वेप का विप निकालकर जिनेश्वर देव के कथन पर ध्यान दीजिए। यह शरीर पानी के वुलवुले की तरह क्षण-भगुर है तथा अशुचि का भण्डार है। इसमे जीव का निवास भी अशाश्वत है। अत इस पर ममता भाव नही रखना चाहिए। शरीर से जीव कव निकल जायेगा इसका कोई विश्वास नही, और फिर मृत्यु भी तो शरीर की होती है देव ! आत्मा की नही। जो यह सोचता है कि आत्मा मरता है वह केवल भ्रम मे है। जैसे वस्त्र पुराने होने पर हम उसे त्याग देते है या उसके स्थान पर दूसरा वस्त्र पहन

लेते है, उसी प्रकार आयुष्य पूर्ण होने पर यह आत्मा नये शरीर मे निवास करने के लिए पुराने शरीर को छोड देती है। किन्तु वह तो अजर-अमर एव अविनाशी है प्राणेश ! उसमे तेरा-मेरा, मोह-ममता, अहकार-भ्रान्ति जैसी कोई चीज नही है। ये सब कर्म-मैल हैं, जो आत्मा की दिव्य-ज्योति को ढक लेते है। इस ससार मे स्त्री-पुरुष, सेवक-स्वामी, पिता-पुत्र आदि समस्त नाते झूठे हैं। ये केवल शरीर तक ही सीमित है। शरीर नष्ट होने के साथ ही इनका सम्बन्ध भी नष्ट हो जाता है, फिर इनके लिए मोह क्यो ? मनुष्य धन और धाम, कचन और कामिनी जो कुछ जुटाता है सब अन्त समय मे उसका साथ छोड देते हैं। केवल धर्म ही एक ऐसा साथी है जो सदा-सर्वदा आत्मा के साथ रहता है। बड़े-बडे चक्रवर्ती सम्राट् पृथ्वी पर आए और मरने के बाद मिट्टी मे मिल गये। कौन पिता, कौन पुत्र, कौन पति, कौन पत्नी, कौन सेना, कौन खजाना उनके साथ गया ? वे अकेले ही महायात्रा के लिए चल पड़े। आप भी महायात्रा के लिए प्रस्थान कर रहे हैं प्राणनाथ ! इसलिए साथी के रूप मे धर्म को अपने साथ ले जाइये। मैं या चन्द्रयश कोई भी आपका साथ नही दे सकते। नाथ ! कर्म सिद्धान्त कहता है कि जीव को जो भी सुख या दु ख मिलता है वह स्वयं उसके द्वारा किये गये कर्मों का ही फल है। प्रत्येक आत्मा स्वतन्त्र है, वह चाहे तो अच्छे कर्म करके अपने को सुख दे सकता है और

चाहे तो बुरे कर्म करके दु ख भी। सुख-दु ख का कर्ता-भोक्ता आत्मा है। अन्य तो केवल निमित्त है। इसलिए निमित्त को किसी सुख-दु ख का कारण मानकर उसके प्रति राग-द्वेष रखना भूल है। इस तलवार के आघात के लिए आप स्वय को अपराधी मानिये और यह मानकर चले कि मेरे पूर्वभव के किसी वैर का बदला यहाँ चुकाया गया है। अब शुद्ध चित्त से धर्म की शरण में अपने को ले जाइए जिससे भविष्य मे आपको अन्य सासारिक कष्टो का सामना न करना पड़े। नाथ ! आपकी यह जीवन-लीला कुछ ही क्षणो मे समाप्त हो जायेगी। इसलिए शेष समय के एक-एक क्षण को अमूल्य मानकर उसे ऐसे मार्ग मे लगाइए जिससे आत्मा का उद्धार हो सके। जानकर या भूल से आप द्वारा जो दुष्कर्म हो गये हैं उनके लिए सच्चे मन से पश्चात्ताप करिये तथा ज्ञानियो द्वारा बताये गये धर्म की शरण मे जाइये। ऐसा करने से आपको सुगति की प्राप्ति होगी। प्राणनाथ ! आप वृथा क्रोध मत कीजिए।" सती मदनरेखा साहस की देवी बनकर यह सदुपदेश पति के कल्याण हेतु दे रही थी।

"अत्याचारी के अत्याचारों का बदला लिए बिना मुझे मत मरने दो मदनरेखा ! मेरी अनुपस्थिति मे वह दुष्ट तुम्हारी राह मे हर समय काँटो का जाल बिछाता रहेगा।"

"प्राणनाथ ! जीवन और मृत्यु किसी भी मनुष्य या

अन्य प्राणी के कारण नही होते । यह तो कर्म की लीला है । आदमी तो केवल एक बहाना है । आप मेरे प्रति राग और भाई के प्रति द्वेष से मुक्त होकर अपने प्राणो का उत्सर्ग करें । मुझे भी तो अपने पापो का फल भोगना है । उससे कोई कैसे बच सकता है ? पति शरीर की रक्षा कर सकता है, किन्तु कर्म के दण्ड को वह कम नही कर सकता । इस सम्बन्ध मे सभी आत्माएँ स्वतन्त्र है । आपका और हमारा सम्बन्ध तो केवल शरीरिक है प्राणनाथ ! आप ही विचारिए, यदि मैं नही होती तो क्या प्राणो से भी अधिक प्यार करने वाले भाई आपकी हत्या पर उतारू होते ? धिक्कार है कामदेव को, धिक्कार है रूप और यौवन को । मेरे सौन्दर्य ने ही भाई के हृदय का स्नेह-स्रोत सुखाकर उसमे द्वेष की आग लगा दी । अत. आपसे मेरा नम्र निवेदन है कि मेरे प्रति राग और भाई के प्रति द्वेष त्यागकर अब आप धर्म का स्मरण कीजिए—

"आत्मा ने अब तक अनेक शरीर धारण किये है । जो अज्ञानी व्यक्ति इस रहस्य को नही जानता वही मृत्यु से भयभीत होकर शरीर के वृथा मोह मे पड जाता है और अधम गति को प्राप्त कर नारकीय यातनाएँ भोगता है । ज्ञानी लोग तो मृत्यु को एक उत्सव मानते हैं नाथ ! आप पत्नी, पुत्र, परिवार या अन्य सम्बन्धो को छोडकर समाधि भाव रखकर देव, गुरु और धर्म मे चित्त लगाकर अनासक्त भाव से नश्वर शरीर को त्यागिये । मैं महायात्रा के लिए

आपको धर्म का पाथेय प्रदान कर रही हूँ, आप इसे स्वीकार करे नाथ !"

मदनरेखा के उपदेश से युगबाहु का क्रोध शान्त हो गया। "मदनरेखा ! मैं धर्म की शरण मे जाता हूँ। धर्म ही सबसे बडा मगल है। ससार का कोई भी जीव मेरा शत्रु नही, मैं सबका मित्र हूँ। मैं सभी जीवो से क्षमा-याचना करता हूँ। शरीर से आत्मा का सम्बन्ध छूट रहा है। मेरी आत्मा मुक्त आकाश मे तेजोमय होकर विचरण करेगी। अच्छा... अब... !"

युगबाहु ने मदनरेखा की गोद मे समाधिपूर्वक अपने प्राण त्याग दिये। युवराज की खुली आँखे प्रश्न करती रही—अपना कौन है ? किन्तु किसी को भी साहस न हुआ जो उनकी आँखो के इस प्रश्न का उत्तर दे सके।



: सोलह :

युगबाहु की मृत्यु के पश्चात् मदनरेखा खिन्न रहने लगी। उसे अपना सौन्दर्य ही नही जीवन भी व्यर्थ लगने लगा और श्वास का एक-एक क्षण एक-एक युग के समान वीतता। वह सोचती थी—'जिस पति को रिझाने के लिए मैं शृ गार करती थी वे तो सदा के लिए रूठ गये। अब कौन इन अलको मे देर तक अपनी अँगुलियाँ फँसाये, मेरे मुख की ओर अतृप्त नयनो से देखते हुए मुस्कान से लवालब भरे अधरो पर मोहित होगा ? यह सुन्दरता भी कितनी निगोडी निकली। इसी के कारण मणिरथ जैसे पुण्यात्मा के हृदय मे काम-विकार आया, और यह प्राणनाथ की मृत्यु का कारण बन गई। अब तो यह बिलकुल व्यर्थ है। इस शरीर को अब जीवित रखने से भी क्या लाभ ? नाहक महाराज का मन नाना प्रकार के विकारो से ग्रस्त रहेगा और सारे कुल के विनाश का कारण मैं बन जाऊँगी। यदि इसकी रक्षा करती हूँ तो शील नष्ट होने की आशका है और शील की रक्षा का यत्न करूँ तो कुमार चन्द्रयश के प्राण सकट मे पड जायेगे। यदि अपने प्राणो का अन्त कर दूं तो मेरे शील और पुत्र दोनो की रक्षा हो जायेगी।' ऐसा वह सोच ही रही थी कि सहसा

एक विचार मन मे कौध गया—'मैं अपने प्राणों का अन्त करने के लिए स्वतन्त्र तो नही हूँ ? मेरे गर्भ मे बालक है। यदि मैंने आत्म-हत्या की तो वह भी मर जायेगा। माता का कर्तव्य गर्भस्थ बालक की रक्षा करना है। इसलिए इसके सिवा किसी और उपाय के बारे मे सोचना चाहिए ताकि सतीत्व की भी रक्षा हो जाय और पुत्र के प्राण भी सकट मे न पड़े।'

कुछ देर तक विचार द्वन्द्व चलने के पश्चात् मदनरेखा ने निश्चय किया—'क्यो न वन मे भाग जाऊँ ? यदि मैं वन मे चली गई तो कुमार चन्द्रयश के प्राण भी बच जायेंगे और मैं अपने सतीत्व की रक्षा भी कर लूँगी तथा गर्भस्थ बालक भी सुरक्षित रहेगा। यही सबसे उत्तम उपाय है। इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय मेरी रक्षा नही कर सकता।'

मदनरेखा इस निश्चय पर दृढ हो गई किन्तु प्रश्न यह था कि बाहर निकले तो कसे ? यदि उसके वन जाने की बात किसी को ज्ञात हो गई तो वे उसे ऐसा करने नही देंगे और यदि चुपचाप भागने का प्रयत्न करूँ तो पहरेदार रोक लेंगे। राज-परिवारो का जीवन वन्दियो से भी वदतर है। आज तक मैं राजपरिवार की वहू होने के कारण अपने को सुखी मानती थी किन्तु जब आजादी का सवाल मेरे सामने आया तो ज्ञात हो गया कि राजकुल की स्त्रियाँ

स्वतन्त्र नही है। उन्हे महल मे रहते हुए एक प्रकार से कारावास का दण्ड दिया गया है।

मदनरेखा यह सोच रही थी कि उसका पुत्र चन्द्रयश वहाँ आ पहुँचा। जैसे ही उसने सुना कि उसके पिता युगवाहु के सिर पर खड्गाघात हुआ है तो वह वैद्यो के साथ वन-निवास तक आया, किन्तु जब उसने विलाप करती हुई जननी से यह सुना कि उसके पिता के प्राण-पखेरू उड गये है तो वह पिता के शव के पास जाकर रोने लगा··· ·। किन्तु धीरे-धीरे मदनरेखा के समझाने पर रोना छोडकर पिता के शव की रक्षा एव अन्तिम सस्कार का प्रवन्ध करने मे वह लग गया।

सारा वातावरण अस्त-व्यस्त हो रहा था। मदनरेखा मन मे सोच रही थी—'जिस पति के दर्शन के लिए आँखें पल-पल तरसती रहती थी, जिनकी कृपा दृष्टि के लिए दुनिया का बड़े से वडा कष्ट झेलती थी, आज उन्हे असहाय छोडकर भागने की चेष्टा कर रही हूँ ?' बार-वार उसकी आँखो के सामने पति का चेहरा आ जाता था और वह आँखो से गिरने वाली अश्रुधारा को रोक नही पाती थी। उसने अपने को सँभाला तथा चारो ओर देखा—कोई रो रहा है तो कोई अन्त्येष्टि-क्रिया का प्रबन्ध कर रहा है, कोई कुमार को सान्त्वना दे रहा है तो कोई दिवगत युवराज के शौर्य और बल की प्रशसा कर रहा है। किन्तु सब लोग जैसे अनाथ हो गये है। किसी को दूसरे

की सुध-बुध नही। मदनरेखा ने सोचा—'भाग निकलने का यह उपयुक्त अवसर है। जो होना था सो हो गया। चन्द्रयश की रक्षा करना भी अब उतना आवश्यक नही रह गया है। वह अपनी रक्षा करने मे थोडा-सा समर्थ भी हो गया है। इसलिए यह अवसर हाथ से नही निकलने देना चाहिए।'

यह निश्चय करके वह पति के शव को अन्तिम प्रणाम करते हुए, धर्म-ध्वज के साथ निकल गई। उसके पाँवो में एक अजीब फुर्ती आ गई थी। किसी प्रकार की मार्ग की कठिनाई या अज्ञानता के प्रति वह चिन्तित नही थी। केवल उसके सामने राह थी—

"चलता चल राही
कही न कही मजिल तेरा इन्तजार कर रही है।"

यदि थककर सो गये तो सपनो का स्वर्ग मिल जायेगा, सारी थकान भूलकर सोये ही रह जाओगे। फिर तुम्हारी कहानी हर एक राही की जुबान पर होगी।

मदनरेखा कभी जमीन पर नगे पाँव पैर भी नही रखती थी। फूलो की सेज भी उसे चुभती थी। वही आज धर्म की रक्षा के लिए काँटो से भरे बीहड रास्ते मे नगे पाँव चल रही है। समय का विधान कोई नही जानता—जो एक दिन राजा है, उसे रक बनकर दर-दर भटकना पडता है। जो कभी पर्यंक पर शयन करते है, आपत्ति के

दिनों मे उन्हें भूमि को शय्या बनाना पडता है। जो सुस्वादु भोजन करते है उन्हे कन्दमूल खाकर और झरनो का जल पीकर रहना पडता है। जो कभी राजसी वस्त्र पहने आभूषणो से सजे रहते हैं, उन्हे गुदडी से अपनी लाज ढकनी पडती है। आज यही मदनरेखा के जीवन का सबसे बडा मोड था। वह ऐसी राह पर चल पडी थी जिसका कोई ओर-छोर नही। वह सारे राज-सुख भोग सकती थी किन्तु सतीत्व की रक्षा के लिए दुनिया के सारे कष्टो को भी उसने चुनौती दे दी।

अब मदनरेखा के शरीर पर राजसी वस्त्र न होकर दासियो के वस्त्र थे। रात का समय था। अनेक भयावने शब्द मदनरेखा के कानों से प्रवेश कर उसके हृदय को वेध जाते थे। किन्तु अँधेरी रात मे भी विना किसी कष्ट की परवाह किये वह मनस्विनी चली जा रही थी। उसने रास्ता बदल लिया, इस भय से कि कही उसकी खोज मे कोई आता न हो। मदनरेखा चलती जा रही थी। अँधेरा धीरे-धीरे कम होने लगा। उसके सामने सिंह गरज रहा था और मदनरेखा मन ही मन सोचती हुई जा रही थी—'ये हिंसक पशु भी मनुष्य से श्रेष्ठ है। ये भौतिक शरीर को नष्ट तो कर देते है किन्तु किसी के शील का अपहरण तो नही करते। चाहे यह सिंह मेरे शरीर को खा जाय किन्तु इससे शील भग होने का तो कोई भय नही है।'

धीरे-धीरे वह सिंह के समीप पहुँच गई, किन्तु सिंह

उसको मारने की अपेक्षा उसके सामने आकर अनेक लीलाएँ करने लगा। सच है यदि किसी के प्रति मन मे वैर-भाव न हो, मैत्री हो तो बुरे से बुरे और क्रूर से क्रूर जीव भी मित्र बन जाते हैं। यह शील और अहिंसा का ही प्रताप है कि सिंह जैसा हिंसक पशु भी आत्मीयता का व्यवहार करने लगा। इस परिस्थिति ने मदनरेखा के मन में धर्म की आस्था को और मजबूत कर दिया। कुछ आगे चलने पर मदनरेखा को जोर की भूख लगी। वृक्षो मे लगे हुए बनैले फलो से उसने अपनी भूख मिटाई और झरने का जल पीकर प्यास बुझाई। वह चलती चली जा रही थी। उसके कोमल पैरो में छाले पड गये थे। फिर भी उसमे साहस की कमी नही थी। कभी-कभी थकावट दूर करने के लिए थोडा बैठकर वह विश्राम कर लेती थी। केवल इसलिए कि गर्भस्थ बालक पर इस अचानक श्रम का कोई बुरा प्रभाव न पड़े। चलते-चलते सन्ध्या हो गई। सूर्य अस्ताचल को चल पडा, तारे आकाश मे झिलमिल कर आने लगे, यह सन्देश देने के लिए कि अब विश्राम करो। आकाश की ओर आँखो के जाते ही वे आँसू से भर गईं। कभी मदनरेखा इन्हे पति के साथ प्रासाद-काष्ठ पर खडे होकर गिना करती थी और जब पति नही आते थे तो वह इनसे उनका समाचार पूछती थी। आज वे ही तारे उसके इस कठिन समय मे सान्त्वना का एक शब्द भी नही कह सकते ? वे एकाएक मौन क्यो हो गये ? क्या

मदनरेखा ने जिन्हें अपना सखा बनाया था वे इतनी जल्दी उसे भूल गये ? किन्तु इनका भी कोई दोष नही, विपत्ति के समय सारे मित्र भी शत्रु बन जाते है।

रात्रि का सुहाना समय था। समीप ही एक लता गृह था। घोंसलो मे पक्षी विश्राम करते हुए अपनी पारिवारिक बाते कर रहे थे। मदनरेखा उन्ही के सुख मे प्रसन्न होती हुई लतागृह मे विश्राम करने की दृष्टि से आई। मार्ग की थकान के कारण वह सो गई। राज-सुख फिर उसे याद आया—वह अनेक गीत-वाद्य यन्त्र सुनकर सोने जाया करती थी। दास-दासियाँ उसकी सेवा करते थे। युगबाहु से बाते करते-करते वह उनकी गोद में सो जाती थी। उनके शरीर की ऊष्मा से वह स्वर्गीय सुख का अनुभव करती थी, न कोई भय न आशका। किन्तु आज वह हिंसक जन्तुओ से घिरी हुई अकेली सो रही है। यदि रात्रि मे—प्यास लगे तो पानी की बूँद भी बिना सरोवर तक पहुँचे नही मिल सकती। लेकिन उसके इस विचार को एक दूसरे विचार ने काट दिया—"वहाँ अनेक आशकाएँ थी तो यहाँ स्वावलम्बन और स्वतन्त्रता है।"

: सत्रह :

रात ढलने लगी थी। मदनरेखा को धीरे-धीरे प्रसव वेदना होने लगी और रात ढलने के साथ ही वह बढ़ती गई। प्रसव नारी के लिए पुनर्जन्म है। इस पीडा को बाँझ नही, सन्तान को जन्म देने वाली कोई सौभाग्यशालिनी स्त्री ही जान सकती है। असह्य वेदना के समय मे उसे किसी के सहयोग की आवश्यकता थी, किन्तु उस निर्जन वन मे सिवा वृक्षो और पशु-पक्षियो के कौन था ? मदनरेखा को बहुत पीडा हुई, राज्य के सारे स्वजन, परिजन याद आये, कुमार चन्द्रयश का जन्म याद आया, जब राजवैद्य और अनेक दास-दासियाँ उसकी सेवा मे उपस्थित थे, किन्तु आज ? वह असहाय है, उसकी पीड़ा बाँटने वाला कोई नही, केवल परमात्मा का स्मरण करती हुई वह प्रसव-वेदना सहती रही।

रात समाप्त हो गई। प्रकृति ने श्याम वस्त्र छोडकर अरुणोदय का गुलावी वस्त्र धारण कर लिया। कलियाँ खिलने लगी, पक्षी चहचहाने लगे, एक सुखद शोर सारे वातावरण पर छा गया। एक असह्य पीडा से मदनरेखा काँप गयी और एक सर्वांग सुन्दर पुत्र को उसने जन्म दिया। पुत्र का मुख देखते ही वह सारी वेदना भूल गई।

उसका मुखमण्डल प्रात कमल की भाँति खिल गया। उसे युगबाहु याद आये, राजवैभव याद आया—आज यदि युवराज होते तो सारा नगर शहनाइयो से गूँज उठता, हीरे-मोती लुटाये जाते, सामन्तो को बडे-बडे पुरस्कार दिये जाते और युवराज तो खुशी से फूले न समाते। पुत्र का मुख चूमते हुए उस अबोध शिशु से वह कहने लगी—"तुम बडे भाग्यवान् हो, राजमहल मे जन्म लिया होता तो वहाँ कृत्रिम उत्सव मनाया जाता। किन्तु आज यहाँ प्रकृति तुम्हारा जन्मोत्सव मनाने मे लगी हुई है। कस्तूरी की गन्ध से महकती वायु, कलियो को चूमते हुए भ्रमर और मगलगान करते पक्षीगण तुम्हारे आगमन की सूचना सबको दे रहे हैं। इसी स्थान की महिमा है कि अपने शील के साथ-साथ मैं तुम्हारी रक्षा कर सकी। तुम कितने पुण्यात्मा हो! ऐसे पवित्र और शुद्ध वातावरण मे तुम्हारा जन्म हुआ, जहाँ प्रेम और आत्मीयता का ऐश्वर्य बिखरा हुआ है। स्वर्ण तुल्य परागो को लुटाकर फूल अपनी आत्मीयता दिखा रहे है। जब तुम गर्भ मे थे, तुम्हारे कारण ही मेरे भीतर इतने साहस का सचार हुआ। जिस प्रकार सूर्य सारे ससार को प्रकाशित कर रहा है, तुम भी अपने कुल को प्रकाशित करो।" मदनरेखा ने देखा, वह अबोध शिशु जैसे उसकी सारी बातें बडी तन्मयता से सुन रहा था।

सूर्य की किरणे आकाश मे फैल गईं जिससे दिशाये

आलोकित हो गई। मदनरेखा ने विचार किया कि प्रसव के वाद मुझे स्नान कर लेना चाहिए। किन्तु समस्या यह थी कि जव तक वह स्नान करके लौटे तब तक नवजात शिशु की रक्षा कौन करे ? कुछ देर के असमंजस के बाद उसने अपनी साडी मे से एक टुकडा फाडकर झोली वना दी और उसमें शिशु को रखकर एक पेड की डाली से लटका दिया। शिशु का मुख चूमकर वह सरोवर की ओर चल पडी। उसका शरीर चल रहा था किन्तु मन शिशु के पास था। वह वार-वार मुडकर उसे देखती जा रही थी।

सरोवर पर पहुँचकर मदनरेखा ने अपने वस्त्र उतारे उन्हे स्वच्छ किया और स्नान करने के लिए जल मे प्रवेश किया। स्नान करते समय ही उसकी दृष्टि क्रौंच मिथुन पर पड़ी जो दूसरे किनारे पर जल-क्रीडा कर रहे थे। कभी-कभी वे कमलपत्र के नीचे छिप जाते थे। एकटक कुछ देर तक वह यह लीला देखती रही—'पति-पत्नी का प्रेम ससार का सवमे वडा सुख है। विना पति के नारी का जीवन निष्प्राण है। यदि इस सरोवर मे पानी नही होता, कमल नही होते तो दूर-दूर से प्यासे क्रौंच और भौंरे कैसे आते।' उसके मुंह से एक आह निकल गई—'विना पुरुष की स्त्री जल रहित नदी-सी प्रतीत होती है। मैंने कौन सा पाप किया था जिससे असमय मे ही मुझे पति से रहित होना पडा ? क्या दुनिया की सवसे वडी अभागिनी मैं ही हूं ? क्या दुर्भाग्य मेरे साथ-साथ चल रहा है ?' यह सोचते हुए

मदनरेखा पीछे मुडी तो उसने देखा कि एक मदोन्मत्त हाथी कमलनाल खाने के लिए तालाब मे अपनी सूँड बढा रहा था, कभी-कभी वह बहुत सारा पानी लेकर अपने ऊपर फेक देता था। उसके कपोलो से मद बह रहा था। उसका मतवालापन देखकर मदनरेखा भयभीत हो गई। वह सरोवर से वाहर निकलकर भागने लगी। हाथी ने उसका पीछा किया। रास्ते की थकान और प्रसव के कारण उत्पन्न शक्तिहीनता ने उसे विवश कर दिया। क्या एक गजगामिनी हाथी का मुकावला कर सकती है ? फिर भी वह साहस बटोरकर भागती रही। मदनरेखा ज्यो-ज्यो भाग रही थी, वह मतवाला हाथी उसे पकडने के लिए चिघाडता हुआ भाग रहा था। अन्त मे मदनरेखा थककर गिर पडी। वह सोचने लगी—'अव हाथी से प्राण बचाना असम्भव है। मणिरथ और गरजते सिह के चगुल से तो निकल आई पर यह हाथी मेरे प्राण लेकर ही चैन लेगा।' वह धीरे-धीरे सरकती हुई एक पेड की ओट मे आ गई। उसने हाथी का रौद्र रूप देखा—वह क्रोध से पेडो मे टक्कर मार रहा था। मदनरेखा की आँखो के सामने पृथ्वी काँपने लगी। हाथी की भयकर चिघाड़ से उसका हृदय इतनी तेजी से धडकने लगा मानो इस तेज धडकन के वाद एकाएक वह बन्द ही हो जायेगा। हाथी उसके निकट ही था। यदि उसने उस पेड के टक्कर मार दी जिसके सहारे मदनरेखा खडी है तो वह पेड के धराशायी

होने के साथ ही मर जायेगी। वह बेतहाशा भागी। हाथी ने फिर पीछा किया। अब आगे भाग सकना कठिन था। काल मदनरेखा की आँखो के सामने नाचने लगा—अब पलक मारते ही हाथी उसके प्राण ले लेगा। अवश्य इसे यमराज ने भेजा होगा। उसका ध्यान शिशु की ओर गया। नवजात शिशु के प्राण माँ के मरते ही निकल जायेंगे। वह परमात्मा का स्मरण करती हुई रुक गई। हाथी उसके समीप आ गया।

हाथी ने मदनरेखा को अपनी सूँड मे उठाकर जोर से ऊपर की ओर उछाला और जोर-जोर से चिघाड़ने लगा। भय के कारण मदनरेखा को मूर्च्छा आ गयी। ऐसा लगा जैसे सूर्य की किरणो मे बिजली कौंध रही है या आकाश से कोई सबसे चमकीला तारा टूटकर गिर रहा है। उसी क्षण आकाश-मार्ग से मणिप्रभ नामक विद्याधर अपने विमान मे बैठा हुआ मुनि-दर्शन के लिए जा रहा था। उसने मदनरेखा की आकृति को देखा साथ ही उसे ऊपर की ओर सूँड उठाये एक हाथी पृथ्वी पर दिखाई दिया। विद्याधर के हृदय मे करुणा उत्पन्न हुई। वह सोचने लगा—'इस मतवाले हाथी ने किसी मनुष्य को ऊपर उछाल दिया है, यदि यह पृथ्वी पर गिर पड़ा तो हाथी उसके प्राण ले लेगा, इसलिए इसको धरती पर गिरने से पहले ही बचा लेना चाहिए। मरते प्राणी को जीवन दे देना सबसे बडा अभयदान है। मैं एक शुभ कार्य के लिए

जा रहा हूँ, उसके साथ ही एक और शुभ कार्य हो जाय तो कितना अच्छा होगा।"

इस प्रकार सोचकर विद्याधर ने अपना विमान नीचे करके गिरती हुई मदनरेखा को बचा लिया। उसने देखा—'एक अपूर्व सुन्दरी नारी चेतनाहीन हो गई है।' उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा—'किसी अप्सरा को अपराध के कारण इन्द्र के दरबार से धक्का देकर निकाल तो नही दिया गया है। जरूर यह कोई अप्सरा है नही तो इतनी सुन्दर स्त्री का पृथ्वी पर क्या काम। यह तो किसी देवता को उसके अनन्त पुण्यो के फल के रूप मे ही मिल सकती है। किन्तु इसमे अप्सरा के अन्य लक्षण दिखाई नही देते। या यह हो सकता है कि किसी बहुत बड़े कार्य के लिए इन्द्र ने इसे पृथ्वी पर भेजा हो और अपना कार्य पूरा करके यह इन्द्र सभा मे जा रही हो। कितना मनोहर है इसका रूप।'

अनेक विचाररेखाएँ विद्याधर के मन मे उठ रही थी। इतने मे मदनरेखा की मूर्च्छा टूटी। वह काँपने लगी—"मैं कहाँ हूँ, आप कौन हैं? मेरे पति के सिवा मुझे अपनी गोद मे रखने का अधिकार किसी पुरुष को नही है। मुझे तो हाथी ने उछाल दिया था। आपने मुझे क्यो बचाया?"

मदनरेखा के अद्भुत सौन्दर्य को देखकर मणिप्रभ की करुणा वासना मे बदलने लगी—"सुन्दरी! मैं मणिप्रभ

नाम का विद्याधर हूँ। मै जब आकाश-मार्ग से जा रहा था तुम विजली की भाँति चमकती हुई किसी अप्सरा-सी जान पडी। मैंने पृथ्वी पर खड़े मतवाले हाथी को भी देखा। इसलिए तुम्हारे प्राण वचा लिए कि दूसरे के प्राण वचाना सबका धर्म है।"

"ठीक है धर्म समझकर आपने मेरे प्राण वचाये तो यह प्राण अव आपका है। आप जैसा चाहे उसका उपयोग कर सकते हैं। आप एक पुण्यात्मा है। मैं आपकी कृपा का वदला कभी भी नही चुका सकती।"



: अठारह :

मणिप्रभ के भीतर वासना की आग प्रदीप्त हो उठी। वह सोचने लगा—'यह विपत्ति की सतायी हुई कोई असहाय सुन्दरी है। मैंने इसके प्राण की रक्षा की, उसका यह इतना बडा उपकार मानती है। अब इसे अपनी प्रेयसी बनाने मे सन्देह क्या है ? नारी बिना किसी सहारे के रह नही सकती और जिसको वह अपना सहारा मान लेती है, उस पर अपना तन-मन निछावर कर देती है। सयोग की बात है कि ऐसी अपूर्व सुन्दरी अनायास मेरे विमान मे आ गई। अपना भविष्य सुखमय बनाने के लिए स्वय यह प्रार्थना करेगी।' इतने मे मदनरेखा ने सम्बोधित किया—"भाई ! आपने मेरे ऊपर बहुत बडा उपकार किया। यदि आपने मेरी रक्षा नही की होती तो मै पृथ्वी पर गिरकर मर जाती। भाग्य की कितनी बडी कृपा है कि मेरी रक्षा के लिए उसने आप जैसा दयालु भाई भेज दिया।"

"सुन्दरी ! तुम्हारे रूप की गरिमा पृथ्वी पर कौन पहचान सकता है ? गन्धर्व कुल में तुम्हारे लिए उपयुक्त स्थान है। मेरा पूरा परिचय अभी तुम्हे नही मिला। सुनो ! वैताढ्यगिरि की दो श्रेणियो के बीच विद्याधरो के ११० नगर है। मैं उनका स्वामी हूँ। विद्याधरो के जितने

राजा है उन सबमे, मैं प्रत्येक दृष्टि से श्रेष्ठ हूँ। बल, वीर्य और कान्ति मे सभी गन्धर्व कुल मेरे समक्ष नतमस्तक है। मैंने स्वेच्छा से उन्हे अभय प्रदान किया है। तुम्हारा बहुत बडा सौभाग्य है कि मै तुम्हे विना प्रयास के प्राप्त हो गया। तुम्हारे प्राणो की रक्षा तो हो गई, अब मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा शेष जीवन सुखपूर्वक वीते। इसलिए मैं तुम्हे अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ। तुम भी विना सकोच पति के रूप मे मुझे वरण कर मेरे भव्य महल मे ऐश्वर्य-सुख का भोग करो।"

अभागी मदनरेखा मौन होकर सोचती रही—'मैं मणिरथ के चगुल से निकलकर मणिप्रभ के चंगुल मे फँस गई। यहाँ अकेली हूँ। रक्षक कोई नही। यह भी मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहता है। यदि मैं पृथ्वी पर गिरकर मर जाती तो ही अच्छा था। सतीत्व नष्ट होने के भय से तो वच जाती। यह चिन्ता भी नही होती कि जिस नवजात शिशु को पेड की डाल मे लटका आई हूँ उसका क्या होगा? जव तक विद्याधर ने मेरा रूप-सौन्दर्य नही देखा था, करुणा से प्रेरित होकर बचा लिया। अव रूप पर मोहित होकर मुझे रानी वनने के स्वप्न दिखा रहा है। यदि रानी वनना ही मेरे भाग्य मे होता तो रनिवास छोडकर भयावह जगल मे क्यो आती? युगवाहु की मृत्यु क्यो होती? सौन्दर्य मेरा सबसे बडा शत्रु वन गया है। हाय! इस क्षण-भगुर सौन्दर्य ने कैसे-कैसे पवित्र पुरुषो को

भ्रष्ट कर दिया। इसी के कारण मेरे जेठ की बुद्धि भ्रष्ट हुई और इतने दयालु विद्याधर के हृदय मे भी विकृति आ गई। हे नियति ! मेरी इतनी कठोर परीक्षा क्यो ले रही है ? मैं तो अवला हूँ। द्रौपदी की लाज तुमने बचाई थी। अशोक वन मे सीता की रक्षा की थी। क्या मैं इतनी हत-भागिनी हूँ कि तुम्हारे कृपा नेत्र मेरे लिए बन्द हो गये। कुछ भी हो प्राण चले जाने पर भी मैं अपना सतीत्व नष्ट नही होने दूँगी। मणिरथ ने पति को मार डाला, मणिप्रभ मुझे मार डालेगा। इससे अधिक क्या हो सकता है। लोक-परलोक तो बना रहेगा।"

"सुन्दरी, क्या सोच रही हो ? यही बात तुम्हे आश्चर्य मे डाल रही है न कि मैं एक विद्याधर की पत्नी कैसे बन सकती हूँ। विलकुल सकोच मत करो। यह उच्च पद मैं तुम्हे स्वयं दे रहा हूँ। सचमुच तुम इस पद की अधिकारिणी हो। तुम्हारे सुन्दर मुख पर चिन्ता की रेखाये अच्छी नही लगती।"

"वीर ! आप क्या कह रहे है ? आप वास्तव मे मेरे पिता हैं क्योकि रक्षा करने वाला पिता ही होता है। अपनी पुत्री समझकर मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं अपने सतीत्व पर अटल रह सकूँ।"

"सुन्दरी ! मैं ऐसा नही मानता कि मैंने तुम्हारी रक्षा की, बल्कि मैंने कही से खोई हुई कोई बहुत ही सुन्दर वस्तु प्राप्त कर ली है। क्या तुम्हे मेरे ऊपर भरोसा नही ?

मै तुमको अपनी बहन या पुत्री नही पटरानी बनाना चाहता हूँ और विश्वास करो, तुम्हे किसी प्रकार का कष्ट नही होगा। तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नही करूँगा। वही करूँगा जिससे तुम प्रसन्न रहो। तुम मेरे साथ चलो।"

"तात ! मै कोई कुमारी कन्या नही। मेरा किसी पुरुष के साथ पाणिग्रहण हो चुका है। एक बार मै अग्नि को साक्षी कर प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ कि अमुक के सिवा कोई दूसरा मेरा पति नही हो सकता, भाई और पिता ही हो सकता है। मेरे पास जो सम्बन्ध था उसे मैंने आपसे कह दिया।"

"यह मानव कुल का विधान है सुन्दरी ! विद्याधर कुल मे इस प्रकार का कोई विधान नही। वहाँ अग्नि की प्रदक्षिणा पर प्रतिज्ञा मे कोई आबद्ध नही। मै तुम्हे मानव-कुल मे नही विद्याधर कुल मे ले जाना चाहता हूँ।"

"तात ! यह इस जन्म मे सम्भव नही। मैंने मानव-कुल मे जन्म लिया है। मानव-जीवन मे चाहे जितने बन्धन हो, नियम हो, विधान हो, उन्हे तोड़कर विद्याधर कुल मे नही जाना चाहती। हो सकता है आपके कुल मे प्रतिज्ञा या साक्षी का कोई विशेष महत्त्व न हो किन्तु पृथ्वी के मानव अपने प्राण देकर भी प्रतिज्ञा और वचन की रक्षा करते हैं।"

"सुन्दरी ! यह मत भूलो कि तुम इस समय मेरे

अधीन हो। तुम्हे वैसा ही करना पडेगा जैसा मैं चाहता हूँ। भला इसी मे है कि अपना हठ छोडकर मेरे साथ चलो और जैसा कि मैं हृदय से चाहता हूँ, मेरी पटरानी बनकर अपने सारे पिछले दु खो को भूल जाओ।"

यह कहकर मणिप्रभ ने अपने विमान का मुख वैताढ्य-गिरि की ओर कर दिया। जब मदनरेखा ने देखा कि इस समय विद्याधर को मोडा नही जा सकता तब उसने दूसरे मार्ग का सहारा लिया। उसने कहा—"अच्छा आप यह तो बताइए कि आप इस समय कहाँ जा रहे थे और जहाँ जा रहे थे वहाँ न जाकर वापस क्यो लौट रहे हैं ? ठीक है यदि आप भाई या पिता बनना नही चाहते तो मैं आपको राजा कह रही हूँ। राजन् ! अपने उद्देश्य से विचलित होना क्या अच्छी बात है ? पहले जिस काम के लिए चले थे उसको पूरा कीजिये फिर दूसरा काम कीजियेगा।"

मदनरेखा का कथन सुनकर मणिप्रभ मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा कि अब सुन्दरी मेरी पटरानी बनकर रहेगी। इसीलिए मेरे व्यक्तिगत कार्यों मे हस्तक्षेप कर रही है और फिर दूसरा इसका मतलब क्या हो सकता है, यही न कि पहले जिस काम के लिए चले थे उसको पूरा कीजिए फिर मुझे पटरानी बनाने की बात सोचियेगा। अब यह अवश्य मेरा प्रेम प्रस्ताव स्वीकार कर लेगी। यह मानकर वह प्रेमपूर्वक बोला—"प्राणप्रिये ! मेरे पिता राजा मणिचूड़ ने सारा राजपाट त्यागकर दीक्षा ले ली

है। वे परम ज्ञानी है। भाई के मुख से उनकी ज्ञान-गरिमा सुनकर उनके दर्शन के लिए जा रहा था। सद्भाग्य से मार्ग मे तुम मिल गई। तुम्हारा शरीर दुर्बल तथा अशक्त है, इसलिए मन में आया कि पहले तुम्हे महल में छोड़कर सेवा-सुश्रूषा की व्यवस्था कर आऊँ, फिर मुनि-दर्शन के लिए जाऊँ।"

"राजन् ! आपके पिता ज्ञानी और सयमी हैं, यह जानकर मुझे वड़ी प्रसन्नता हुई। मुनि-दर्शन की महिमा अद्भुत है। पारस के सतसग से लोहा भी सोना हो जाता है। न जाने किस जन्म के पुण्य से आप जंसे दयालु मुझे मिल गये। इस समय आप ही मेरे आधार हैं। यदि मुझे भी मुनि-दर्शन का लाभ करा सके तो आपकी वडी कृपा होगी। यदि आपने मुझे मुनि-दर्शन से वचित रखा तो मैं अपना जीवन त्याग दूँगी।"

"प्रिये ! यह तो वहुत सरल काम है। यदि तुम देव-दर्शन के लिए भो हठ करती तो उसको पूरा करने के लिए मैं अपने सारी शक्ति लगा देता। विश्वास रखो, मणिप्रभ के सामने तुम्हारी कोई भी इच्छा अपूर्ण नही रहने पायेगी। यदि तुमने मेरे प्राण भी माँगे तो हँसते-हँसते तुम्हे भेंट कर दूंगा।"

"राजन् ! आप कितने महान हैं !"

मदनरेखा सहित विमान मे वैठा हुआ मणिप्रभ मुनि-दर्शन के लिए चल पड़ा। दोनो की प्रसन्नता का कोई

ठिकाना नही था। मणिप्रभ भविष्य के सपनों मे डूबा हुआ था। मदनरेखा मुनि के आचार-सयम की कल्पना कर रही थी। विश्व के कल्याण के लिए जिन्होने सब कुछ त्याग दिया वे कितने महान् है। सम्राट् से सन्त बन जाना, दया और सेवा का अमृत जन-जन को बाँट देना कितनी बड़ी महानता है। विषय-भोगो के पंक मे लिपटा हुआ मनुष्य वासना की पूर्ति के लिए नाना प्रकार के अत्याचार करता है। दूसरो को पीडा देता है। परन्तु ये सयमी पुरुष ! कितना महान् है इनका जीवन। छोटे से छोटे और बडे से बडे, सब मे समभाव। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारो का पूर्णतया परित्याग। तलवार की धार पर चलने वाला इतना कठिन व्रत। फिर भी हृदय मे कितना आनन्द ! कितनी शान्ति ! ऐसे पुरुषो का दर्शन कर क्या मेरा जीवन धन्य नही हो जायगा ?

मणिप्रभ ने मौन भग किया—"प्रिये ! तुमने अपना नाम नही बताया। क्या इस स्वप्न-सुन्दरी का सुन्दर-सा नाम जान सकता हूँ ?"

"राजन् ! मेरा नाम मदनरेखा है। नाम इतना बडा पर भाग्य के नाम पर विपदा ही विपदा।"

"कितना सुन्दर नाम है। चिन्ता मत करो मदनरेखा, अब तुम्हारा जीवन बदल जायेगा।"

"यही तो मैं भी चाहती हूँ राजन् ! यह नारकीय जीवन बदल जाय, तभी सुख और शान्ति मिलेगी।"

"मदनरेखा ! क्या तुमने कभी आकाश से पृथ्वी को देखा है ?"

"राजन्, आकाश से पृथ्वी को तो नही, पृथ्वी से आकाश को अवश्य देखा है। लोगो को कहते सुना है—आकाश शून्य है, उसका जो इतना सुन्दर और सुहावना रूप दिखाई देता है, वह एक मायाजाल है। उसके पास जाने पर कुछ भी नही मिलता। उसमे विचरण करने वाले स्थिर नही रहते। उनका मन चचल होता है। कई वसेरों मे निवास करते है, कई नदियो और सरोवरो का जल पीते हैं, किन्तु इतने पर भी जब उनकी प्यास नही बुझती तो तडफडाकर पृथ्वी पर गिर पडते है और पृथ्वी के दयालु जीव उन्हे उठाकर नया जीवन देने के लिए व्याकुल हो जाते है।"

"यह सब तुमने दूर से सुना है मदनरेखा।"

"और अब पास से देख रही हूँ।"

"क्या यह सच नही कि आकाश मे विचरने वाले उन्मुक्त हैं।"

"वह उन्मुक्तता किस काम की राजन् ! जो किसी के काम न आये ? पृथ्वी का जीवन सचमुच महान् है। वहाँ तृष्णा के वाद तृप्ति तो मिल जाती है किन्तु यहाँ तो तृप्ति नाम की कोई वस्तु नही। उसके लिए पृथ्वी पर ही उतरना पडता है।" □

: उन्नीस :

विमान पृथ्वी पर उतरा, तपोवन के समान उस सुरम्य वातावरण मे जहाँ मणिप्रभ के दीक्षित पिता विराजमान थे। मणिप्रभ और मदनरेखा दोनो मन-ही-मन प्रसन्न थे। मणिप्रभ सोच रहा था—"सुन्दरी की इच्छा पूर्ण करके मैंने इसका मन जीत लिया। यहाँ से लौटकर आसानी से इसे पटरानी बना लूंगा।" मदनरेखा सोच रही थी—"सयमी पिता के समक्ष उसके सतीत्व को कोई खतरा नही। यहाँ तो भयभीत से भयभीत प्राणी भी अभय प्राप्त करता है।"

चारो ओर शान्ति का साम्राज्य था। श्वेत वस्त्रधारी मुनिराज एक शिला पर विराजमान थे। प्रवचन-पीयूष की धारा बह रही थी। श्रोतागण बडे मनोयोग से उसमे अवगाहन कर रहे थे। बीच-बीच मे यदि किसी के मन मे कोई शका उठती थी तो उसका वही समाधान हो जाता था। मणिप्रभ और मदनरेखा दोनो मुनि को वन्दना करके सुख-शान्ति पूछकर बैठ गये। सयमी पुरुष की वाणी में बडा ओज था। शास्त्रो का सन्दर्भ देकर वे प्रत्येक तथ्य की पुष्टि कर रहे थे। उनके उन्नत ललाट पर ब्रह्मचर्य का तेज दमक रहा था। दृष्टि इतनी तीक्ष्ण थी कि उससे

दृष्टि मिलाने का साहस नही होता था। वाणी से प्रकट होता था कि उनका हृदय शान्ति और करुणा से लबालब भरा था। वे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पचमहाव्रत की परिपालना कर रहे थे। उनके जीवन का ध्येय था—सर्व प्राणियों को अभयदान देकर मोक्ष प्राप्त करना। ललाट पर अद्भुत तेज के बीच अनुभव की रेखाये खिची हुई थी। कितनी प्रभावपूर्ण उनकी वाणी थी कि जिसको सुनकर सबके कान तृप्त हो रहे थे। न किसी को भूख-प्यास की चिन्ता, न घर-परिवार के लिए उद्वेग। शान्ति ही शान्ति।

प्रवचन समाप्त हुआ। मगल-पाठ के पश्चात् व्यक्तिगत-दर्शन-लाभ के लिए जन-समूह उमड पडा। मदनरेखा और मणिप्रभ की बारी बाद मे आई। मुनिराज ने कुशल-क्षेम पूछा। मणिप्रभ मौन था। अपने विशिष्ट ज्ञान के द्वारा मुनिराज मणिप्रभ और मदनरेखा के मन की बात समझ गये—मणिप्रभ का मन उद्वेलित था कि यह समय शीघ्र समाप्त हो जाय और अप्सरा-सी सुन्दरी को अपने महल मे ले जाकर वह सुख-भोग का आनन्द प्राप्त करे और मदनरेखा यह सोचकर मेरे पास आई है कि उसके सतीत्व की रक्षा हो जाय। मणिप्रभ मदनरेखा को पत्नी बन।ने की जितनी जल्दी मे है, वह उससे भी जल्दी अपने सतीत्व की रक्षा चाहती है। मुनिराज ने इस द्वन्द्व को जानकर दोनो को बैठने का सकेत करते हुए "दया-

पालो" शब्द कहा, और उनके बैठ जाने पर मुनि ने प्रसगोचित उपदेश देना आरम्भ किया—"संसार की माया बडी प्रबल है। किसी भी हालत में उससे छूट पाना असम्भव है। वह मनुष्य की इन्द्रियो के माध्यम से अपना काम पूरा करती है। आँख किसी रूप को देखती है, त्वचा उसके स्पर्श के लिए व्याकुल हो जाती है, जिह्वा उसका स्वाद चखना चाहती है, कान उसका मधुर शब्द सुनना चाहता है, नासिका उसकी सौधी गन्ध के लिए व्याकुल हो जाती है। सभी इन्द्रियाँ मिलकर सोये मन को जगाने लगती हैं। मन विकारग्रस्त हो जाता है। और जहाँ काम-विकार आया कि मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है। वह उचित या अनुचित के भेद को भूलकर कामातुर हो जाता है। उसे असह्य पीडा होती है और वह इस मृगतृष्णा से व्याकुल हो जाता है। दूसरी ओर जो इन्द्रियो को वश में करके सयम धारण कर लेता है उसे परम शान्ति और सन्तोष मिलता है। शास्त्र कहता है—जो मनुष्य दूसरे की स्त्री को माता के समान और दूसरे के धन को मिट्टी के समान मानता है, वही चतुर है, ज्ञानी है, विवेकी है। दुनिया उसी की पूजा करती है। दूसरी बात यह भी है कि भोगो से इन्द्रियाँ कभी तृप्त नही होती। विषय वासना एक अग्नि है जिसमे ज्यो-ज्यो भोग का घी पडता जायेगा वह बढती ही जायेगी। यदि उसे बुझाना है तो उसे सयम के जल मे पूरी तरह डुबो देना होगा। वास्तव मे वासना

से छूटने का यही मार्ग है। और वासना के दूर जाने के बाद मनुष्य जिस स्थिति पर पहुँच जाता है वही मोक्ष है। वह नारी धन्य है जो पर-पुरुष की कामना नही करती। सतीत्व से बढकर नारी के लिए कोई दूसरा धर्म नही है। जो स्त्री भली-भाँति अपने सतीत्व की रक्षा करती है, वह माया के वन्धनो से छूटकर मोक्ष प्राप्त करती है। नीति विशारद कहते हैं स्त्री मे पुरुष की अपेक्षा सात गुना कामशक्ति अधिक होती है। यदि वह सयम छोडकर विषय-भोग के पीछे भागने लगे तो ससार मे आग लग जायेगी। उसके प्रत्येक हाव-भाव, मान, क्रोध आदि पुरुष को रिझाने के अस्त्र हैं। किन्तु जो पुण्यशीला नारी इन अस्त्रो को फेककर धर्माचरण मे अपना मन लगा देती है वही संसार की माता यानी रक्षिका वन पाती है। तव उससे शक्ति का महान् स्रोत फूट पडता है। वह भूले हुए को मार्ग वता सकती है, रक को राजा वना सकती है और आग मे झुलसते को शान्ति और शीतलता दे सकती है।"

मुनि के सारगर्भित उपदेश को सुनकर मणिप्रभ का काम-विकार नष्ट हो गया। उसके हृदय की दुर्भावना उसी प्रकार मिट गई जैसे सूर्य के आते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है। वह मदनरेखा के प्रति किये गये अपने व्यवहार के लिए मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगा। वह अपने को धिक्कारने लगा—'मैं नभचर होकर एक भूचरी के रूप

पर पागल हो गया, काम भी कितना वली है। इस सती ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए मुझे भाई और पिता तक कहा, किन्तु मेरा विकार शान्त नही हुआ। सच है, कामान्ध हो जाने पर वहन, बेटी और माँ मे कोई अन्तर दिखाई नही देता। सारा ससार नारीमय दीखता है। इसीलिए तो शास्त्रज्ञो ने एकान्त मे पर-स्त्री से मिलने के लिए मना किया है। यदि मेरे साथ ही इस पतिव्रता की भावना भी डिग गई होती तो मैं धर्म से पतित होकर अपने उज्ज्वल कुल के कलक का कारण बन जाता। कितनी निपुणा है कि वह अपनी रक्षा के लिए ही किसी-न-किसी उपाय से मुझे यहाँ ले आई। इसने अपने सतीत्व की रक्षा तो की ही, मुझे भी पतित होने से बचा लिया।" यह सोचते हुए हाथ जोडे मणिप्रभ मुनि के सामने खडा हुआ।

"प्रभो ! इस सती के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर मैं पतित होना चाहता था, किन्तु आपके पास लाकर इसने मुझे घोर नरक मे गिरने से बचा लिया। आपके धर्मोपदेश से मेरी दुर्भावना सदा के लिए मिट गई और अपने किये गये पाप के लिए मुझे वहुत खेद है। आपके सामने व्रत लेता हूँ कि अपनी विवाहिता पत्नी के सिवा ससार की सभी स्त्रियो को मैं माता और बहन के समान मानूंगा। उनका स्पर्श करना भी पाप समझूंगा।"

"मणिप्रभ ! मनुष्य के पतन के लिए पग-पग पर गड्ढे

बने हुए है और उत्थान के लिए पग-पग पर विस्तृत मार्ग भी। जैसा जिसका सस्कार है, वह वैसे ही मार्ग पर चल पडता है। जब भी मनुष्य विकारग्रस्त हो उसे अपने कुल की मर्यादा और धर्म का स्मरण करना चाहिए। ऐसा करने पर वह पतित होने से बच जाता है। एक सुन्दरी के रूप पर तुम मोहित हो गये। मैं तुमसे पूछता हूँ—यह रूप-यौवन कितने दिन रहने वाला है? बुढापा प्रत्येक रूप को नष्ट कर देता है वत्स! जिस रूप पर मनुष्य लालायित रहता है, वह क्षण-भगुर है। वृद्धावस्था आने के वाद शरीर की क्या स्थिति बनती है—झुरियों भरा चेहरा, सफेद बाल, लडखडाती टाँगे, धनुष-सी झुकी कमर, पत्ते से काँपते हाथ मौत का सन्देश देने लग जाते हैं। क्या क्षण भर की इस रूप-जवानी के लिए आदमी इतना पागल हो जाता है? भोग से रोग उत्पन्न होता है मणिप्रभ! यदि भोग द्वारा मनुष्य अपने शरीर को क्षीण न करे तो उसकी आयु, ज्ञान, यश और बल बढ़ते हैं और आत्म-कल्याण के साथ-साथ दूसरो के कल्याण का भी निमित्त वह बन जाता है। भूमि पर जन्म लेने वाली एक नारी के हृदय मे सयम के प्रति इतना लगाव था और तुम पुण्यलोक मे विचरने वाले विद्याधर कुल मे उत्पन्न होकर भी इतने कामासक्त हो गये। परस्त्रीगमन से मनुष्य का यश, धन, बल, आयु सभी नष्ट हो जाते हैं मणिप्रभ! इससे बडा पाप इस संसार मे नही है। कुलटा स्त्रियो की

दृष्टि कामी पुरुष की प्रत्येक सुन्दर वस्तु पर होती है। वे हाथी के समान बलवान पुरुष को भी शिथिल कर देती हैं। कुबेर के समान धनवान को भिखारी बना देती हैं और सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को इतना हीन कर देती है कि लोग उस पर थूकते है, उसका नाम लेना भी पाप समझने लगते हैं। महासागर के बडे-बड़े भँवरो मे डूबकर निकल पाना सम्भव है किन्तु एक बार जो नारी के रूप सागर मे डूब गया वह कभी निकल नही सकता मणिप्रभ !"

"प्रभो ! यह रहस्य आप जैसे ज्ञानी ही जान सकते है और संसार को बता सकते है। मेरे अपराधो के लिए आप मुझे दण्ड दीजिए ?"

"मणिप्रभ ! किसी अपराध का सबसे बड़ा दण्ड यही है कि मनुष्य उसे फिर नही करे और जो हो चुका उसके लिए सच्चे मन से पश्चात्ताप करे। यदि भविष्य मे तुमने अपने मन को पर-स्त्री से बचाये रखा तो ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ तुम्हारे चरण चूमेंगी।"

: बीस :

मुनि का उपदेश सुन लेने के पश्चात् मणिप्रभ मदनरेखा के सामने उपस्थित हुआ। उसके मन मे मदनरेखा के प्रति किये गये अपराध के लिए महान् पश्चात्ताप था। वह अपने को अपराधी मान रहा था। कुछ क्षण के मौन के पश्चात् वह मदनरेखा से बोला—"बहिन ! आपके प्रति अपशब्दो का प्रयोग कर मैंने महान् पाप किया है। आपके प्रति ऐसा करना सर्वथा अनुचित था फिर भी आपने मेरे पाप के बदले मे भी इतना बड़ा उपकार कर मुझे घोर पतन से बचा लिया। आपका यह उपकार मैं कभी भी नही भूल सकता। मेरे जैसे अधम को आप मुनिराज के सामने ले आई और उनके उपदेश से मेरे हृदय की सारी कालिमा धुल गई। आपने इस संकट की घड़ी मे भी अपने सतीत्व की रक्षा की और मुझे भी सन्मार्ग पर लगा दिया। मैं आपका बहुत आभारी हूं। अपने विचारों के लिए मैं लज्जित हूँ। क्या आप मणिप्रभ जैसे अधम को क्षमा नही कर सकती ?"

"भाई ! आपका इतना दु खी होना और अपने को इतना घोर पापी मान लेना उचित नही, क्योंकि काम-विकार से बुद्धि मे मूढता का आ जाना स्वाभाविक है।

अच्छे-बुरे का विवेक नही रह जाता है और इस स्थिति मे आदमी से कोई भला-बुरा हो भी जाय तो इतना पश्चात्ताप क्यो ? आपने मुझे काल से गाल से निकालकर नया जीवन दिया, मुनिराज के दर्शन का लाभ कराया। क्या इस महान् उपकार को मैं आपकी छोटी-सी भूल के आगे भूल जाऊँ ? ऐसा कदापि नही हो सकता। आप धीरज रखिये।"

"बहिन, आप धन्य है। सचमुच आप मे पृथ्वी जैसी सहनशीलता है और जो नारी पृथ्वी की भाँति सहनशीला और अपने धर्म मे अटल हो, उसके दर्शन से ही सारे पाप धुल जाते हैं। आप जैसी सती-साध्वी नारियो के प्रताप से ही यह पृथ्वी टिकी हुई है। तो क्या अब मैं यह समझूँ कि आपने मेरा अपराध क्षमा कर दिया ?"

"भाई, आपने अपराध ही क्या किया है। अपने मन मे यह बात आने ही मत दीजिए कि आपने कोई अपराध किया। आपने जिस स्थिति मे कोई अपराध कर डाला, उस समय कोई शैतान आपके भीतर आकर बैठ गया था और मजबूर कर रहा था अपराध करने के लिए, क्योकि दुनिया मे अनर्थ का कर्ता-धर्ता वही है। आप तो एक पुण्यात्मा के पुत्र हैं, स्वयं भी आप पुण्यात्मा हैं। आपके कर्मों का ही तो फल है कि आपको यह पद मिला है। चलिए, महामुनि की सेवा मे एक बार फिर चलें। मन ऐसा कहता है कि उनके दर्शन बार-बार करें।

उनकी आकृति कितनी सौम्य है। चारो ओर शान्ति ही शान्ति।"

"ऐहिक जीवन के सारे सुखो को त्यागकर ही उन्हे यह सम्पदा मिली है, बहिन! काम-भोगों मे लिप्त इन्द्रियो को उन्होने सयम के सूत्र मे बाँध दिया है। अब उनके मन पर आत्मा का शासन है। वे आत्मा मे ही परमात्मा का दर्शन करते हैं। उनके लिए सब अपने, सब पराये। फिर क्या ऐसी निर्लिप्त आत्मा के दर्शन के बाद भी कोई मोह या अज्ञान रह सकता है? जीवन की निःसारता का इन्होने कितना सुन्दर विवेचन किया है। इनका कहना है—हीरे जैसी आत्मा को कौडी जैसे विषय-भोगो के मोल में मत बेचो। उसे बचाकर रखो, सदा तुम्हारे काम आयेगी।"

"माया-मोह के जल से जो कमल की भाँति ऊपर उठ जाते हैं वही दुनिया का उपकार कर सकते हैं भाई! यदि इन्द्रियो के सुख की परवाह करते तो नगे पाँव, नगे सिर कैसे विचरण कर सकते थे। शीत, ताप और वर्षा तीनो को एक समान समझकर जीने वाले क्या साधारण मनुष्य हो सकते हैं। अपने योग बल से ही तो इन्होने भूत, वर्तमान और भविष्य को जाना है।"

मदनरेखा और मणिप्रभ दोनों जाकर मुनि के सान्निध्य मे बैठ गये। क्षण भर मौन के पश्चात् मदनरेखा ने निवेदन

किया—"गुरुदेव ! आप परम ज्ञानी है। यहाँ आने से पहले मैंने एक पुत्र को जन्म दिया था। उसे पेड की डाली से झोली मे लटकाकर जब मैं सरोवर मे स्नान करने गई थी तो वहाँ मैं हाथी के द्वारा सताई गई। अब आपके समक्ष हूँ। मुझे उसके भूतकालीन वृत्तान्त जानने की आवश्यकता तो नही है किन्तु वर्तमान और भविष्य के सम्बन्ध मे जानना चाहती हूँ। कृपा करके मेरी जिज्ञासा शान्त कीजिए। एक दुखियारी माँ का हृदय अपने नवजात शिशु के लिए तडप रहा है।"

मुनिराज के गम्भीर मुख पर क्षण भर के लिए हँसी की रेखा खिंच गई। उन्होने कहा—"देवानुप्रिया ! इस पृथ्वी पर प्रत्येक मनुष्य अपने पूर्वकर्मों के फल लेकर जन्म लेता है। उसे वही मिलता है जो उसने पहले दिया है। इसमे परिवर्तन करने का अधिकार किसी दूसरे को नही। फिर यह चिन्ता क्यो ? यह तो आदमी की मूर्च्छा है। वास्तव मे हम जिसके भले-बुरे के लिए कुछ नही कर सकते, उसके लिए इतनी व्याकुलता क्यो ? माँ बच्चे को दूध पिलाती है, प्यार करती है, यह जानकर कि वह उसे सुख दे रही है, उसे प्यार कर रही है किन्तु उसका यह समझना भूल है। बच्चे के पूर्वकर्मों के कारण माता बाध्य है उसे सुख देने के लिए। मनुष्य का असमय मे ही मर जाना, किसी के लिए अमृत की नदी बहना और किसी के लिए होठ तक आये अमृत के प्याले का भी विष बन जाना, क्या यह

कर्मों का खेल नही है ? आत्मा अपनी चिन्ता करे, शेप उसे क्या करना है ? तुम्हारा पुत्र वहुत पुण्यवान है। अपने पुण्य के प्रभाव से ही गर्भ मे रहकर तुम्हारी भी रक्षा करा सका और स्वयं भी सुरक्षित है। तुम्हारा कर्तव्य था—पुत्र को जन्म देना, जन्म तुमने दे दिया। तुम्हारा काम पूरा हो गया।"

"किन्तु गुरुदेव ! पुत्र को जन्म दे देना मात्र ही तो माँ का धर्म नही होता। उसका पालन-पोषण भी तो आवश्यक है। माँ के समान पुत्र का कल्याण चाहने वाला दूसरा कौन हो सकता है ? पुत्र के सुख के लिए माँ अपने सारे सुखों का त्याग कर देती है।"

"ठीक है देवी, किन्तु जिसके कर्म शुभ नही है उसकी माँ मर जाती है या अवैध तरीके से माँ ने पुत्र को जन्म दिया है तो उसे अपने से दूर फेंक देती है या अशुभ घड़ी मे यदि पुत्र उत्पन्न हुआ तो माँ उसको किसी दूसरे को दे देती है। सब जगह उसके अपने कर्मो का ही फल मिलता है।"

"गुरुदेव ! सन्तोष नही होता। आप जैसे ज्ञानी तो ऐसे कटु यथार्थ को सहन कर सकते है किन्तु हम ससारी लोग तो उसी को सत्य मानते है जिसे रात-दिन अपनी आँखो के सामने देखते हैं। जिसे रात-दिन अपने हाथो से करते है।"

"देवी ! हम जो कुछ अपनी आँखो से देखते है, वह प्रकृति की रग-बिरंगी माया है। अज्ञान है, मूढता है, भ्रम है। इस भ्रम से छूटने का ही नाम तो मुक्ति है। पति अपनी पत्नी को प्राणो से भी अधिक प्यार करता है किन्तु उसके मरने पर पत्नी उसे नि.सार समझकर विसर्जित कर देती है। भोगो मे जब तक मन लिप्त रहता है तब तक उसे क्षणिक सुख मिलता है किन्तु जब वह घडी समाप्त हो जाती है तो आदमी के सामने असन्तोष और निराशा के सिवाय कुछ नही रहता। सब कुछ असार लगने लगता है। इस कडवी सच्चाई को जानने के लिए माया के मल को धोना पड़ेगा। अपने भीतर झाँकना पडेगा। जब तक दर्पण पर मैल जमा रहता है तब तक अपने शुद्ध स्वरूप को देख पाना असम्भव है। अज्ञान के आवरण से जो कुछ ढँका हुआ है वही सत्य है, उसी तक पहुँच जाने का नाम मोक्ष है। अज्ञानावरण मे लिपटा रहकर क्षणिक सुखो के भोग मे आदमी अपने जीवन की अनमोल घडी खो देता है। जब सबको छोडकर अकेला जाने लगता है तब उसके भीतर असह्य पीडा होती है, आँखे खुल जाती हैं—क्या यह सब इतना क्षणिक है कि अभी इन्हे पाया था अभी छोडकर चल दिया ? फिर इन्द्रियो से पूछता है—तुम शिथिल क्यो हो ? वे भी मौन रह जाती है—जब तुम ही शिथिल पड गये तो हमारी बिसात क्या ? यही अन्तिम सत्य है देवी ! जिसे ज्ञान और वैराग्य के द्वारा देखा जा

सकता है। शरीर नाशवान् है। जब तक मनुष्य में शक्ति है वह जो कुछ कमाना है कमा ले, जब अशक्त हो जायेगा तब तो पछताने के सिवा कुछ भी नही रह जायगा। पिता, पुत्र, पति, परिवार, मित्र का जितना बडा मेला दिखाई दे रहा है वह सब यही रह जायेगा। केवल अपने कर्मो का फल ही साथ जायेगा। इसलिए जितना हो सके धर्माचरण कर लो। फिर कौन किसकी सुनता है। अज्ञान, अहकार, राग, द्वेष और प्रमाद ससार के सबसे बड़े क्लेश हैं। इनस आसानो से छूट पाना बड़ा मुश्किल है और जो इनसे छूट जाता है उसको ये कभी सता नही सकते, वह परम पद प्राप्त कर लेता है।"

"गुरुदेव ! यह बात समझ मे नही आती कि वासनाएं मनुष्य का साथ क्यो नही छोड़ती ? जिसके सोने के लिए कठोर जमीन है, परिवार के नाम पर केवल एक शरीर है, वस्त्र फटे-पुराने हो गये है, भोजन भी एक बार किसी तरह रूखा-सूखा मिल पाता है फिर भी वासनाएँ उसके मन से दूर नही हो पाती। जो बड़े-से-बड़े साम्राज्य का परित्याग कर जगलो मे चला जाता है वह उसे त्यागकर चले आने का अभिमान नही छोडता। जो स्त्री किसी कारणवश अपना पातिव्रत निभा लेती है उसे सती होने का अभिमान नही छोड़ता—वह अधम गति प्राप्त करती है। ऐसा क्यो ?"

"इन सबका कारण अज्ञान है देवी ! अज्ञान ही तो

सबसे बड़ा दुःख है। जब तक ऊँट पहाड के पास नही जाता वह अपने को सबसे ऊँचा मानता रहता है। जब तक पहाड से हम दूर है तव तक वे सुन्दर दिखाई देते है। पास आने पर उसमे अनेको दोप दिखाई देने लगते है। यह सारी स्थितियाँ भ्रम के कारण उत्पन्न हो जाती हैं। यदि वस्तुस्थिति का ज्ञान हो जाय तो इनके जन्म लेने का प्रश्न ही नही खडा होता।"

"गुरुदेव ! यह बताइए कि मनुष्य को शान्ति कैसे मिल सकती है ?"

"देवी ! वासनाओ के पूर्ण अभाव का नाम ही शान्ति है। वासनाएँ मन मे उद्वेग पैदा करती है। मनुष्य को कही चैन-सन्तोष नही मिलता। वह एक मृगतृष्णा के वश मे होकर इधर-उधर भागता रहता है किन्तु जव उद्वेग शान्त हो जाता है तब आत्मा परम आनन्द मे डूब जाता है। स्थिर हो जाता है। यही शान्ति है और इसको पाने का तरीका है ज्ञान और वैराग्य की उपासना, साधना। विषयो से मन को हटाकर उसे निःश्रेयस मे लगाना।

गुरुदेव द्वारा मार्मिक प्रभावपूर्ण उपदेश श्रवण कर मदनरेखा का हृदय परम शान्ति का अनुभव करने लगा।

□

: इक्कीस :

मिथिलापुरी मे पद्मरथ नाम का एक यशस्वी राजा था। उसके राज्य मे प्रजा सुखी थी। राजकोप धन से भरा था। राजा अद्भुत वीर, पराक्रमी और नीतिज्ञ था। उसकी पुष्पावती नाम की रानी थी जो रूप और शील-गुण मे उत्तम थी। राजा उसके चन्द्रानन का दर्शन करते ही सब कुछ भूल जाते थे, किन्तु वह हर प्रकार के प्रमाद से राजा को सावधान रखती थी। उसका रूप-सौन्दर्य किसी प्रकार से भी राजकार्य मे बाधक नही हो पाता था। पति-सेवा को वह अपना परम कर्तव्य मानती थी। गृह कार्य से निवृत्त होकर वह राज-कार्य मे भी पति की सहायता करती थी। इतनी रूपवती और शील-गुण सम्पन्न होने पर भी वह अहकार से दूर थी। अनावश्यक आमोद-प्रमोद उसे अच्छा नही लगता था। धैर्य, साहस, तथा गाम्भीर्य की वह प्रतिमूर्ति थी।

किन्तु सन्तान के अभाव मे उसका मन खिन्न रहता था। वह सोचती थी—'राजा मुझसे इतना प्रेम करते है किन्तु अभी तक मैं उनको एक पुत्र रत्न भी नही दे पाई। पुत्र के अभाव मे राजा का हृदय किस प्रकार तडप रहा होगा ? वन्ध्या स्त्री का जीवन उसी प्रकार निरर्थक है,

जैसे फल-फूल न देने वाली लता का।' वह सन्तान के लिए तडप रही थी, अपने भाग्य को कोस रही थी—'मैंने पूर्वजन्म में कोई वहत बडा पाप किया है इसलिए मुझे सन्तान प्राप्त नही हो रही है, क्योकि सन्तान ही तो नारी जीवन की सार्थकता है।' इसी प्रकार न जाने कितनी पीडा वह भीतर-ही-भीतर सहन कर रही थी। एक दिन पुष्पावती ने खिन्न होकर राजा पद्मरथ से कहा-"महाराज ! मैं तो बाँझ रह गई। आप अपना दूसरा विवाह कर सन्तान प्राप्त करें तो अच्छा रहेगा।"

"प्रिये ! हम इतने बडे राज्य के स्वामी हैं। इतनी प्रजा है, क्या प्रजा हमारी सन्तान नही है ? पुत्र की तरह प्रजा का पालन करना राजा का धर्म है और जो राजा इस कार्य को सम्यक् रूप से चलाता है वह स्वर्ग का अधिकारी होता है। उसे नरक नही मिलता। तुम्हें इस प्रकार उदास नही रहना चाहिए।"

"कुछ भी हो महाराज, आप दूसरा विवाह कर लीजिए। आने वाली सपत्नी को मैं अपनी छोटी वहन मानकर प्यार करूँगी। उससे ईर्ष्या नही करूँगी।"

"पुष्पा ! तुम्हारी जैसी स्त्री का मिलना कठिन है। इतना प्यार, इतना उदार हृदय, इतना सुख और कोई भी दूसरी स्त्री नही दे सकती। स्त्री कामिनी कहलाती है। अधिकाश स्त्रियाँ उसी पुरुष से प्रेम करती हैं जो उनकी

काम-वासना की पूर्ति करता है। इसलिए किसी दूसरी स्त्री की ओर मेरा मन कभी नही गया।"

"प्राणनाथ ! ऐसा मत सोचिये। ऐसी स्त्रियो की भी कमी नही है जो पति को अपने प्राणो से भी ज्यादा चाहती है और पति के हर सुख-दु ख मे जीने-मरने को तैयार रहती है।"

"इस पृथ्वी पर ऐसी स्त्री केवल तुम हो पुष्पा ! तुम्हारा साहचर्य मेरी प्रत्येक इच्छा पूरी कर देता है। तुम कामधेनु हो, कल्पवृक्ष हो, चिन्तामणि हो। जव कभी मै उदास होता हूँ तब तुम अपने प्रिय और हितकारी वचनो तथा हास्य-लास्य से मेरे मन का दु ख भुला देती हो, जव किसी सकट मे पड जाता हूँ मित्र की भाँति उससे उवरने का मार्ग खोज देती हो, जव विचारो के भँवर मे डूवने लगता हूँ मन्त्री की भाँति न्याय का मार्ग दिखलाती हो, जव शासन करने की इच्छा होती है तुम पृथ्वी के समान सहनशीला वन जाती हो। तुम्हारे साथ मेरी सारी इच्छाएं पूर्ण हा जाती हैं फिर दूसरे विवाह के लिए मुझे क्यो प्रेरित करती हो ? क्या मुझसे तुम्हारा अव पहला-सा प्रेम नही रहा ?"

"ऐसा कदापि नही हो सकता प्राणनाथ ! किन्तु स्त्री-पुरुष के सारे आकर्पण सन्तान के लिए ही होते हैं। एक-दूसरे के हृदय मे वे प्रेम का जा वीज बाते हैं, यदि उसके

फल के रूप मे सन्तान नही मिलती तो उनके हृदय मे प्रेम का उमडता हुआ समुद्र रेगिस्तान बन जाता है। उनका मन बिखर जाता है। वे एक-दूसरे से टूट जाते है। आपकी वीरता और ओज को मैं जानती हूँ। यदि कमी कही है तो वह मुझमे है।"

"पुष्पा! यह सब तुम इसलिए कहती हो कि तुम मुझसे बहुत प्रेम करती हो। हो सकता है कमी मुझमे हो और उसके लिए तुम अपने आप को दण्डित करना चाहती हो।"

"महाराज! यदि ऐसा होता तो आपसे दूसरे विवाह के लिए कदापि नही कहती। इतने बड़े राज्य का उत्तराधिकारी तो होना ही चाहिए नही तो प्रजा क्या कहेगी। कौन उसकी आशाओ को जीवन देगा? इतने बड़े महल में घुटनो के बल चलकर किलकारी भरते हुए एक बालक के अभाव मे कितना भयावना वातावरण हो गया है। एक क्षण के लिए लगता है जैसे जीने का कुछ अर्थ ही न हो। कुछ भी हो, आप इस पर थोडा विचार तो कीजिए।"

"प्रिये, तुम्हारा आग्रह हठ मे बदलता जा रहा है। जो बात स्वप्न मे भी मेरे दिमाग मे नही आई उसके लिए मुझे इतना प्रेरित करना क्या ठीक है? ससार की कोई भी नारी अपने स्थान पर दूसरी नारी को नही आने देना चाहती। उसमे लाख कमियाँ हो किन्तु दूसरी नारी को

वह अधिकार नही देना चाहती जो उसे मिला है। किन्तु तुम्हारा विचार जानकर तो महान् आश्चर्य होता है। क्या तुम्हारा नारीत्व मर गया है ?"

"हाँ महाराज ! इसीलिए अपना स्थान किसी दूसरी नारी को देना चाहती हूँ। उस वृक्ष से क्या लाभ जिस पर फल न लगे ?"

"पुष्पा ! पति-पत्नी का सम्बन्ध फल-फूल के लिए नही होता। वह एक सामाजिक बन्धन है और इससे भी अधिक नर-नारी का नैसर्गिक प्रेम है, एक-दूसरे के प्रति आकर्षण है।"

"यह सन्तान की ही एक भूमिका होती है नाथ ! जैसे धीरे-धीरे दूर होने वाला अँधेरा प्रभात के आगमन की सूचना देता है और आकाश मे मँडराते काले बादल पानी बरसने की। नर-नारी का यह एक प्राकृतिक आकर्षण होता है और इस आकर्षण एवं तृप्ति के बाद उन्हे जो कुछ मिलता है वह सन्तान ही है।"

"चाहे कुछ भी हो पुष्पा ! मैं अपने और तुम्हारे बीच किसी दूसरी नारी को आने देना नही चाहता। मैंने एक नारी के साथ प्रेम किया है, उसे जीवन-भर निभाने का व्रत लिया है चाहे दुनिया की खामियाँ उसके अन्दर हो, मैं उसे त्यागने के लिए कभी भी किसी भी हालत मे तैयार नही हूँ। स्त्री वह खोटा सिक्का नही जो जब चाहे बदल

लिया जाये। वह जीवन संगिनी होती है और इस सत्य को मैं झुठलाना नही चाहता।"

"आखिर कितने दिन ?"

"पुष्पा ! तुम पद्मरथ के हृदय को फिर से टटोलो। उसमे तुम्हारे सिवा किसी दूसरी नारी के लिए तिलमात्र भी जगह नही है। इस जीवन मे तुम्हारा स्थान कोई दूसरी नारी नही ले सकती।"

"जीवन का रास्ता बहुत लम्बा है महाराज ! उसमे न जाने कितने जाने-अनजाने मोड़ आते रहते है। इसलिए कल के लिए आज ही फैसला कर लेना चाहिए। जब वृक्षो मे फल-फूल नही आते तो माली बड़ी निर्दयता से उन्हे निरर्थक जानकर काट फेकता है और पछताता है—नाहक इतने दिन तक इनकी सेवा की, इन्हे सींचा, इनकी देखभाल की, इससे तो अच्छा था इन्हे अपने बगीचे मे लगाया ही न होता।"

"सच्चा माली अपने पौधों को कभी नही काट सकता पुष्पा ! कुल्हाडी की हर चोट ऐसी लगती है जैसे वह उसके हृदय पर पड रही हो। फल और फूल न सही, हरे-भरे पत्ते तो हैं। उनकी छाया तो है जिसके नीचे धूप और वर्षा से क्षण भर मुक्ति मिल सकती है। सूख जाने पर लकडी जलाने के काम तो आ सकती है।"

"महाराज ! आप समझ नही रहे है। तर्क से तर्क

करते जाने पर आदमी किसी नतीजे पर नही पहुँच सकता। वह तो वात को बढाते जाने का एक असफल प्रयास है। मेरे कारण आप अपने जीवन को कलंकित मत कीजिए। यदि आपके हृदय में कोई काँटा सदा के लिए चुभा रह गया तो लोग मुझे धिक्कारेंगे। पत्नी का यह धर्म होता है कि पति के कल्याण के लिए वह सदा उत्तम साधनों की खोज करती रहे।"

"वे सारे साधन तुम्हारे अन्दर मौजूद है पुष्पा! जब तुम यह प्रसंग मेरे सामने रखती हो तो मैं अन्दर-ही-अन्दर तडप जाता हूँ, मेरी छाती पर पहाडों का बोझ उतरने लगता है। क्या सन्तान जैसी छोटी चीज हमारे और तुम्हारे बीच इतना बडा अलगाव पैदा कर देगी? और पुष्पा, अभी जीवन का सारा समय तो वीत नही गया? जब तक प्राण हैं, आशा करती रहो न जाने कब भाग्य खुल जाय। इतना अधीर होने की आवश्यकता भी क्या है?"

"समय पर हर चीज अच्छी लगती है महाराज! समय पर वर्षा, समय पर धूप, समय पर सन्तान। कुसमय मे कोई चीज अच्छी नही लगती और न ही उसका कोई अच्छा प्रभाव पडता है। युवावस्था की सन्तान बुढापे मे सहारा बनाती है और बुढापे की सन्तान जिन्दगी का बोझ। इसलिए युवावस्था को किसी लम्बी प्रतीक्षा में बिताना ठीक नही।"

"पुष्पा ! तुम्हारी यह बात मै कदापि नही मान सकता। सुखद क्षण जब भी आये तभी अच्छा। कल मुझे वन-बिहार के लिए जाना है। वन की शोभा देखे भी बहुत दिन बीत गये। प्रमद सरोवर मे कमल बहुत खिल रहे है, उनकी शोभा देखने के लिए जाना है। तुम्हे मेरे लिए आवश्यक सामग्री तैयार रखनी है।"

दूसरे दिन वन-विहार के लिए समुद्यत बने सम्राट् पद्मरथ ने सौदामिनी से कहा—"सौदामिनी ! मैं आज अंगरक्षकों के साथ वन-विहार के लिए प्रमद सरोवर को जा रहा हूँ। महारानी पुष्पावती यहाँ अकेली रहेंगी। तुम जानती हो, आदमी जब एकान्त मे अकेला रहता है तो नाना प्रकार की दुश्चिताए उसे घेर लेती है और वह किसी ऐसे नतीजे पर जा पहुचता है जिसका प्रभाव भविष्य मे अच्छा नही पड़ता और उसको बहुत पश्चात्ताप करना पड़ता है।"

"महाराज ! आप तनिक भी चिन्ता मत कीजिए। हम महारानी की देखभाल अच्छी तरह करेंगी। हास्य-विनोद मे उनको इस प्रकार उलझा देंगी कि कोई चिन्ता उनके पास फटकने ही नही पायेगी।"

"सौदामिनी ! सन्तान के अभाव मे पुष्पा का मन सदा चिन्तित रहता है। मै सोच नही पाता, क्या करना चाहिए जिससे वह प्रसन्न रहे। और यदि वह प्रसन्न नही

दिखती तो मेरा अपना जीवन भी बोझ की तरह लगने लगता है।"

"महाराज ! हमारी महारानी बहुत पुण्यात्मा है। सबके लिए उनके हृदय मे कितना प्रेम है। भला वे विना सन्तान के कैसे रह सकती है ? एक-न-एक दिन उनकी मनोकामना जरूर पूर्ण होगी। फिर हम लोगो को भी बड़े-बड़े उपहार मिलेगे।"

"सौदामिनी ! सच मानो यदि यह कामना पूरी हो गई तो तुम्हारा मुँह मोतियो से भर दूँगा।"



: बाईस :

अहा ! कितना सुहावना सरोवर है ! चारों ओर कमल खिले हैं और रस के लोभी भौरे उन पर मँडरा रहे हैं। किनारे पर खड़े वृक्ष अपनी परछाई निर्मल जल मे देखकर झूम रहे है। कही क्रौंच जोड़े विहार कर रहे हैं तो कही कलहसों की पक्ति आकाश मे उडती हुई दिखाई दे रही है। लगता है सरोवर के भीतर एक और आकाश है जिसमे बहुत से पक्षी उड रहे है। शैवालो मे रग-बिरगी मछलियाँ इधर-उधर घूम रही है। तभी किसी भटियारिन का गीत पद्मरथ के अधरो पर थिरक जाता है—

"पिया ! पोखरी से ला दे सोन मछरी"

सोने की मछली ! हाँ। किसी दिन मछली मारने भटियारिन इस सरोवर मे आई होगी। सहसा उसकी निगाह सोने की मछली पर पड़ गई होगी किन्तु उसे पकड़ने मे असफल होकर वह खिन्न हो गई होगी और उसन जाकर अपने पति से कहा होगा कि जब तक तुम सोने की मछली लाकर नही दोगे मैं तुमसे नही बोलूंगी और अपनी प्रिया को रिझाने के लिए वह चल दिया होगा अपना जाल लेकर। यदि पुष्पावती कही मुझसे भी सोने

की मछली माँग बैठे तो ? मैं उस भटियारिन की खोज कराऊँगा और उसके प्रियतम से सोने की मछली मँगाऊँगा ।

पद्मरथ नाना प्रकार की कल्पनाओ मे कुछ देर खोया रहा । फिर घोड़े से उतरकर उसने सरोवर के जल से प्यास बुझाई और भटियारिन का गीत गुनगुनाता घोड़े पर बैठ गया । घोडा भी जैसे सरोवर की शोभा को देखकर मतवाला हो गया था । ऐड लगते ही वह भाग चला । पद्मरथ ने लाख प्रयत्न किया किन्तु वह रुक नही सका । अन्त मे जाकर एक पेड़ के नीचे वह अपने आप खड़ा हो गया ।

पद्मरथ के कान मे किसी शिशु के रोने की आवाज आई । वह आश्चर्य से चारो ओर देखने लगा । उसकी निगाह एक पेड की डाली पर गई जिसमे एक झोली मे लटका हुआ कोई शिशु अपने हाथ-पैर चला रहा था । कौतुहल वश राजा ने वह झोली उतारी । उसने देखा—एक दिव्य बालक झोली मे पडा है, उसके अंगो के लक्षणो से पता चलता है कि एक-न-एक दिन वह पृथ्वी का सम्राट होगा । बालक को देखकर राजा के मन मे वात्सल्य उमड़ आया । वह रानी पुष्पावती के खिन्न मुख को याद कर और बच्चे के प्रसन्न मुख को देखकर गद्गद हो गया । उसने सोचा—इतने सुन्दर बालक को किस माता ने जन्म दिया और इस सुनसान जगल मे इसे अकेला छोडकर

वह कहाँ चली गई ? बच्चे को गोद मे लेकर पद्मरथ उसकी माँ की खोज करता रहा। घूमते-घूमते साँझ हो गई किन्तु कोई भी ऐसी माँ नही मिली जो बच्चे को अपना सके। हिरणो के कुछ बच्चो को पद्मरथ ने देखा जो अपनी माँ के शरीर से सटे हुए उसके साथ-साथ हरी-हरी कोमल घास चर रहे थे। अपने-पराये का भेद भूलकर राजा ने बच्चे को छाती से लगा लिया। उसका सुन्दर मुख चूमकर उसे बडी तृप्ति मिली। सहसा एक विचार पद्मरथ के मन मे आया—'क्यो न इस बच्चे को अपने घर ले चला जाय ? पुष्पावती भी पुत्र के लिए सदा दु खी रहती है। ऐसा पुत्ररत्न पाकर उसकी खुशी का ठिकाना नही रहेगा। भाग्य ने एकाएक इतना सुन्दर बालक मुझे कैसे दे दिया। यदि उसकी कृपा मेरे ऊपर नही होती तो घोडा यही आकर क्यो रुकता ? लगता है इस बालक के साथ मेरा पूर्वजन्म का कोई सम्बन्ध है।'

इस प्रकार सोचता हुआ राजा पद्मरथ बालक को लेकर मिथिलापुरी को चल दिया। बालक को लिए हुए वह रानी पुष्पावती के महल मे पहुँचा। सन्तान की चिन्ता मे रानी का मुख मुरझाये हुए फूल की भाँति लग रहा था। चिन्ता मे वह खोयी ही थी कि पद्मरथ ने उसकी गोद मे बालक को रख दिया।

"प्रिये ! लो देखो, भाग्य ने तुमको यह पुत्ररत्न प्रदान किया है।"

"यह आप क्या कह रहे है महाराज ! कौन-सी ऐसी माता है जिसको प्रसव-पीड़ा के विना ही पुत्र मिल जाय ।"

"यह ऐसा ही पुत्र है पुष्पा ! इसके अंगो के लक्षण तो देखो, एक दिन मिथिलापुरी का राजा यही बनेगा ।"

"वडा सुन्दर वालक है महाराज ! इसका मुख देखकर भूख-प्यास सव मिट जाती है। कितनी भाग्य-शालिनी वह माँ होगी जिसने ऐसे पुत्र को जन्म दिया। क्या एक पल भी वह इसे अपनी आँखो से ओझल होने दे सकती है ?"

"क्यों नही ? वह तो इसे एक पेड की डाली से वॉधकर न जाने कहाँ चली गई। विचारी दु ख की मारी कहीं भटक गई होगी ।"

"महाराज ! किसी माँ की आँखो का तारा इस प्रकार उठा ले आना उचित नही ।"

"पुष्पा ! कितना वताऊँ तुम्हे । जहाँ-जहाँ आदमी के पैर पहुँच सकते हैं, सव जगह मैंने इसकी माँ की तलाश की किन्तु वह कही न मिली। फिर अनायास मिले इस रत्न को मैं कहाँ छोड आता, इसीलिए लेता आया हूँ। तुम इसका पालन-पोषण करो। इसका मुख देखकर तुम्हारा सारा दु ख दूर हो जायेगा। तुम माँ होने का

गौरव प्राप्त कर सकोगी और मैं पिता होने के ऋण से उऋण हो जाऊँगा।"

"महाराज! आप कितने कृपालु है। इस पुत्र को अब मैं अपनी आँखो से दूर नही जाने दूंगी। यदि इसे खोजते हुए उसकी माँ यहाँ तक आ पहुँची तब भी इसे नही जाने दूँगी। मैं इसे उस माँ से माँग लूंगी। महाराज, सच-सच बताइए, मुझे ललचाने के लिए आप कोई अभिनय तो नही रच रहे है? इस बालक को पाकर मुझे बहुत खुशी हुई। यदि आप वास्तव मे मेरे लिए लाये हैं तो मैं अपने को बहुत भाग्यशालिनी मानती हूँ। यह बालक मेरे अँधेरे घर का उजाला बन जायेगा। परन्तु अचानक इसकी सूचना दूसरो को मिली तो?"

"पुष्पा! तुम प्रसूति-गृह मे बैठकर यह प्रकट करो कि मैं गुप्त रूप से गर्भवती थी, जिसे मैंने प्रकट नही किया और आज पुत्र रूप मे मैंने एक अद्‌भुत रत्न को जन्म दिया है। ऐसा करने पर लोगो को ज्ञात हो जायगा कि हमें पुत्र की प्राप्ति हुई है।"

"मैं अंजलि भर-भर कर हीरे-मोती और लाल लुटाऊँगी महाराज! आज आप सब दीन-दुनियों को मुँह माँगा दान दीजिये।"

पुत्र जन्म का समाचार राज्य भर मे फैल गया। अचानक इस खुशी का समाचार पाकर प्रजा हर्ष से नाच

उठी। मगल-वाद्य बजने लगे। तोरणो से द्वार सजाये गये। सारे नगर मे प्रकाश किया गया। राजभवन में इतनी खुशी सिमट कर आ गई थी जिसका सारे महल मे समा पाना असम्भव था। पद्मरथ और रानी पुष्पावती ने सबको उपहार दिये। मिथिलानगरी मे सर्वत्र आनन्द की लहर फैल गई।

राजा पद्मरथ के शत्रु इससे पहले यह सोच रहे थे कि राजा का कोई पुत्र नही है इसलिए पद्मरथ की मृत्यु के पश्चात् सारा राज्य हम हड़प जायेगे, किन्तु जब उन्होने सुना कि रानी पुष्पावती ने पुत्ररत्न को जन्म दिया है, तब सारा विरोध भूलकर वे राजा के यहाँ उपहार मे अमूल्य रत्न, हाथी, घोड़े आदि लेकर उपस्थित हुए और नमन करके पद्मरथ को भेट दिये। पद्मरथ शत्रुओ के नमन से बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने रानी से कहा—"देखो पुष्पावती! यह पुत्र कितना प्रतापी और भाग्यवान् है। इसके जन्म लेते ही सारे शत्रु वैर-विरोध भूलकर बहुमूल्य उपहार लाये है।"

"हाँ महाराज! ऐसा पहले तो कभी नही हुआ था कि शत्रु हमारे उत्सव मे सम्मिलित हो और भेंट भी लाये। वे तो सदा हमारा विरोध ही करते रहे। वास्तव मे यह बालक बडा पुण्यवान् है।"

"पुष्पा! यदि तुम सहमत हो तो इस बालक का नाम

नमिराज रख दिया जाय। यह बडा ही यशस्वी वालक है।"

"महाराज ! जब शत्रुओ ने इसके कारण आकर नमन किया तो इसका नाम नमिराज रखने मे मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? इस नाम के साथ मिथिलापुरी का बहुत बड़ा इतिहास जुडा रहेगा।"

"इस वालक का नामकरण तो हो गया प्रिये ! किन्तु ज्योतिषियो को बुलाकर इसके भविष्य के बारे मे पूछना चाहिए।"

"महाराज ! भविष्य के वारे मे अभी से चिन्ता क्यो करें ? अभी तो इसके पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा के बारे मे ही सोचना चाहिए।"

"वह तो ठीक है, किन्तु इसके भविष्य के अनुसार ही यदि शिक्षा-दीक्षा हो तो कैसा रहेगा ?"

"ठीक है महाराज ! जैसी आपकी इच्छा।"

दैवज्ञ शिरोमणि सोमनाथ आये। उनके सामने बालक लाया गया। उन्होने वालक के अग-लक्षणो और हस्त रेखाओं को भली-भाँति देखकर कहा—"महाराज ! नमिराज एक प्रतापी और यशस्वी राजा होगा इसमे तो कोई सन्देह ही नही है, किन्तु कुछ समय तक राज्य-सुख भोग लेने के बाद वह विरक्त होकर राज-पाट का

परित्याग कर देगा और प्रव्रजित होकर मोक्ष पद भी प्राप्त करेगा।"

"दैवज्ञ शिरोमणि ! क्या यह एक अच्छा भविष्य कहा जा सकता है ? विस्तार से बताइए। मेरा कौतुहल बढता जा रहा है।"

"महाराज ! इससे उत्तम भविष्य क्या हो सकता है कि राजभोग के पश्चात् मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर ले। ऐसा भाग्य तो अनन्त पुण्यो के एक साथ उदय होने पर ही होता है। इस बालक मे तो असाधारण पुरुष के लक्षण हैं। यह मिथिलापुरी का नाम उज्ज्वल करेगा और मोक्ष-मार्ग का अनुशास्ता भी होगा। इसकी शिक्षाओ पर चलकर अनेक आत्माएँ मोक्ष प्राप्त करेगी। सयमधारियो का भी यह सम्राट् ही बनकर रहेगा। इसलिए चिन्ता की कोई बात नही। क्यों महारानीजी ?"

"दैवज्ञ शिरोमणि ! पुत्र के संन्यास की बात से मुझे थोडी चिन्ता होती है। हमे पुत्र से यह अपेक्षा थी कि वह वश-परम्परा को कायम रखे और प्रजा-पालन से कभी मुख न मोड़े।"

"महारानीजी ! क्या आपका तात्पर्य है कि नमिराज प्रजा को सुख नही देगा ? उसके राज्य मे प्रजा इतनी सुखी रहेगी जैसे चन्द्रमा के उदित होते ही कमल।

चिन्तामणि मिल जाने पर मनुष्य अपनी सारी चिन्ताएँ भूल जाता है।"

"ठीक है, पुष्पा ! जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है। केवल राज-भोग से अगला जन्म कैसे सुधर सकता है। उसके लिए तो वैराग्य और सयम की ही आवश्यकता होती है।"

पुत्र के ऐसे अनुपम भविष्य को जानकर राजा-रानी सुख और सन्तोष के सागर मे डूब गये।

: तेईस :

मदनरेखा ने मुनि से पूछकर अपने पुत्र की स्थिति ज्ञात कर ली। वह आश्वस्त हो गई थी। उसके विचारो मे एक महान् परिवर्तन आ रहा था। विनयपूर्वक उसने आगे प्रश्न किया—

"गुरुदेव ! आप परम ज्ञानी है। आपने अपनी दिव्य दृष्टि से यह बता दिया कि मेरा पुत्र मिथिलापुरी मे पद्मरथ राजा के महल मे सुरक्षित और सुखी है। किन्तु उसके पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनने की भी इच्छा हो रही है। कृपा करके वह भी बताइए।"

"देवी ! राजा पद्मरथ और तुम्हारे पुत्र के बीच पूर्व-जन्म मे एक गहरा सम्बन्ध था। आज जो पिता-पुत्र बने हुए है, पूर्वजन्म मे वे सहोदर भाई थे। दोनो का भ्रातृ-सम्बन्ध जम्बूद्वीप के अन्तर्गत पूर्वविदेह मे पुष्कलावती विजय के मणितोरणपुर नगर से प्रारम्भ होता है। वे दोनो मणितोरणपुर नगर के चक्रवर्ती राजा अमितयश के पुत्र थे, जहाँ उनका नाम पुष्पशिखर और रत्नशिखर था। दोनो ने एक चारणमुनि के उपदेश से सयम (दीक्षा) ले लिया। सयम नियम के साथ मुनिधर्म का पालन करते

हुए दोनो भाई देहावसान के पश्चात् बारहवे देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न हुए।"

देवलोक की स्थिति भोगकर दोनो ने धातकी खण्ड के भरतक्षेत्र मे हरिसेन वासुदेव की रानी समुद्रदत्ता के गर्भ से जन्म लिया। वहाँ पर एक का नाम समुद्रदत्त और दूसरे का नाम सागरदत्त था। वहाँ भी दोनो भाइयो ने सयम ग्रहण कर लिया। सयम का अभी तीसरा ही दिन था और ये दोनो समाधि मे बैठे ही थे कि अचानक आकाश से बिजली गिरी और दोनो भाई कालधर्म को प्राप्त हो गये। कालधर्म के प्राप्त होने पर ये महाशुक्र देवलोक मे देव हुए। जिस समय भगवान अरिष्टनेमि गिरनार पर्वत पर समवशरण मे विराजमान थे। ये दोनों भाई भगवान की सेवा करने के लिए समवशरण मे उपस्थित हुए। भगवान अरिष्टनेमि को वन्दना-नमस्कार करके और उनका उपदेश सुनकर दोनों भाइयो ने उनसे प्रश्न किया—"प्रभो! हम दोनो भव्य और चरमशरीरी है अथवा अभव्य और अचरमशरीरी ?"

भगवान अरिष्टनेमि ने कहा—"हे देवो! तुम दोनो की आत्मा सयम की आराधना करने के कारण पवित्र है। तुम दोनो भव्य और चरमशरीरी हो। इस समय तो तुम दोनो भाई-भाई हो, परन्तु देव स्थिति भोग लेने के पश्चात् एक का जन्म युगबाहु की धर्मशीला पत्नी मदनरेखा के

गर्भ से होगा और दूसरा मिथिला का राजा पद्मरथ होगा। इस प्रकार तुम दोनो मे भाई-भाई का सम्वन्ध नही रहेगा बल्कि इस सम्वन्ध के वदले तुम दोनो पिता-पुत्र के रूप मे रहोगे। युगबाहु की पत्नी मदनरेखा से जिसका जन्म होगा वह जन्म तक ही माँ के पास रह पायेगा। परिस्थितिवश उसका लालन-पालन राजा पद्मरथ के यहाँ होगा और वह पद्मरथ का पुत्र कहा जायेगा जिसका नाम नमिराज होगा। वहाँ कुछ काल तक पुण्य का फल भोगकर तुम दोनो क्रमशः सयम लेकर मोक्ष प्राप्त करोगे।"

भगवान अरिष्टनेमि का कथन सुनकर दोनों देव वहुत प्रसन्न हुए। वे भगवान को वन्दना नमस्कार करके महाशुक्र देवलोक मे लौट गये। वहाँ की स्थिति भोगकर एक भाई तो मिथिला का राजा पद्मरथ हुआ दूसरा तुम्हारा वह पुत्र हुआ जो राजा पद्मरथ के यहाँ पुत्ररूप में पल रहा है। तुम्हारे उस पुत्र का जन्म वन और संकटपूर्ण स्थिति मे इसलिए हुआ था कि वह राजा पद्मरथ के यहाँ पहुँच जाय। यही सक्षेप मे उनका पूर्व वृत्तान्त है देवी!

"महात्मन्, आपके सान्निध्य में आकर मेरे सारे संकट दूर हो गये। चिन्ता, भय या और भी किसी प्रकार का दैविक, दैहिक अथवा भौतिक ताप मुझे स्पर्श तक नही कर पाया। आपकी सेवा में आने से मेरे भाई मणिप्रभ की मनो-भावना भी वदल गई और जिस नवजात पुत्र के बारे में मैं

चिन्तित थी उसका सुखद वृत्तान्त भी सुन लिया। आपके कथन से मेरा भी मन यही चाहता है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह व्रत का पालन कर अपने जीवन को मोक्ष मार्ग मे लगाऊँ। इस क्षणभगुर ससार मे ऐसा कोई दिखाई नही देता जिसे अपना कह सकूँ। प्रत्येक आत्मा को अपने किये का ही फल भोगना है फिर क्यो न इसे सत्कर्मों मे लगाया जाय। जीवन को कुकर्मों मे खोने से क्या लाभ ? आप धन्य हैं गुरुदेव ! आपने मुझे एक मार्ग दिखा दिया। मुझे अपने लक्ष्य की याद दिला दी। अब तक मैं यह मानती थी कि पुत्र की रक्षा माता करती है किन्तु अब समझ मे आया कि उसकी रक्षा उसका अपना कमाया हुआ पुण्य ही कर सकता है। आपके श्रीमुख से पुण्य-धर्म की महिमा सुनकर मेरे हृदय मे सयम के प्रति अटल विश्वास हो गया। अब मैं दीक्षित होकर साध्वी का जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ।"

"साधु जीवन बडा कठिन है मदनरेखा ! तुम राज-वैभव मे पली एक राजकन्या हो, राजकुल मे ही तुम्हारा विवाह हुआ। राज-भोग मे जो मन अब तक रहा उसे सयम की कठोरता कैसे सहन होगी। मन जब एक धारा में बह जाता है तब उसकी धारा को मोड पाना बडा कठिन है। एक-एक इन्द्रिय मे हजारो-लाखों घोडो का बल है। वे जिस दिशा मे चल चुकी उनकी लगाम कसकर दूसरी दिशा मे मोड़ पाना उतना ही कठिन है जितना कि

हवा की दिशा को मोड़ देना। दूसरी ओर संयम पर चलना तलवार की धार पर चलना है। साधु का जीवन खजूर के पेड की तरह ऊँचा है। जो उस पर चढ़ जाता है उसे तो स्वादिष्ट फल मिलता है किन्तु जो गिर जाता है वह चकनाचूर हो जाता है। सयम वही ले सकता है जिसमे सिंह का सा साहस हो। वह उसका भली प्रकार निर्वाह कर सके। संयम से गिर जाने पर मनुष्य का कोई मूल्य नही रहता। वह अधम गति को प्राप्त करता है।"

"महात्मन्! इन्द्रियाँ बडी चंचल है। उन्हे रोक पाना कठिन है किन्तु ससार का ऐसा कौन सा लक्ष्य है जिसे पूर्ण अभ्यास और वैराग्य से न पाया जा सके। जैसे कीचड़ मे फँसा हुआ हाथी किनारे को अपने आँखो से देखता हुआ भी उस तक नही पहुँच पाता। उसी प्रकार ससार के भोगो मे लिप्त प्राणी मोक्ष मार्ग को देखते हुए भी उस पर नही चल पाता। जो प्रयत्न करके इस मोह-पक से निकल जाता है उसका जीवन धन्य हो जाता है गुरुदेव! जब तक सयम का सुख नही मिलता, इन्द्रियाँ उसे दु ख मानती है, किन्तु जब वह सुख मिल जाता है, मनुष्य कभी उसे छोड नही सकता। उसे सारे सांसारिक सुख भौतिक और निस्सार लगने लगते है।"

"देवी! मनुष्य के मन की गति हर क्षण बदलती रहती है। एक क्षण जिसे वह निस्सार और तुच्छ मान

लेता है, दूसरे ही क्षण उसी के लिए लालायित हो उठता है। एक व्यक्ति को मरते हुए देखकर दूसरा व्यक्ति सोचता है कि उसे भी मरना है किन्तु जब उसकी आँखो के सामने से वह दृश्य हट जाता है तब फिर वह उसी पाप-पुण्य मे लग जाता है। बहुत-से ऐसे क्षण आते हैं जब आवेश में आकर मनुष्य बड़े-से-बड़े काम के लिए निश्चय कर लेता है किन्तु आवेश के समाप्त होते ही वह निश्चय बालू की दीवार की तरह ढह जाता है। इसलिए आवेश मे आकर लिया गया कोई भी निर्णय भविष्य के लिए खतरा बन सकता है।"

"महात्मन् ! मन की गतियाँ यदि बदलती न रहे तो काम-भोगो मे आकण्ठ डूबा हुआ व्यक्ति एकाएक सब कुछ छोडकर सयम मे कैसे प्रवृत्त होगा। मैं तो इसे जीवन का रस-परिवर्तन मानती हूँ। कहाँ कामिनी के कुचित केश मे विहार करती अँगुलियाँ और कहाँ काठ की शुष्क माला, कहाँ कोमल शय्या, कहाँ भूमि शयन, कहाँ सुस्वादु भोजन, कहाँ रूखी-सूखी थोडी सी रोटियाँ। यह एकाएक कैसे हो जाता है। दुनिया के सारे रसो का भोग भी आवश्यक है। महात्मन् ! जिसकी इन्द्रियाँ भोगो से अतृप्त रह गई हैं, जिसके मन मे किसी प्रकार की इच्छा शेष रह गई है वह कभी भी सयम से गिर सकता है। इसलिए कई मनीषियों का तो यह भी मत है कि जब तक इन्द्रियाँ भोगो से थक न जाये तब तक सन्यास मत लो। किन्तु मैंने सकल रसो

का आस्वादन कर लेने के पश्चात् यह पाया है कि संयम रस के समान अमृत अन्यत्र दुर्लभ है।"

"तुमने ठीक कहा मदनरेखा! किन्तु इसका क्या प्रमाण है कि तुमने वासनाओ को जीत लिया है, इन्द्रियों एव मन को वश मे कर लिया है।"

"गुरुदेव, आप तो त्रिकालदर्शी है। भूत, वर्तमान और भविष्य की कोई भी गाथा आपसे अपरिचित नही है। आपको मैं क्या प्रमाण दे सकती हूँ कि मैंने अनन्त संकल्प और विकल्प के उद्गम मन को जीत लिया है। मन की सहगामिनी इन्द्रियो को वश मे कर लिया है। हाँ, इतना अवश्य वचन दे सकती हूँ कि सयम का पालन अवश्य ही प्राण-प्रण से करूंगी। जिन भोगो को वमन मान लिया उन्हे पुन चाटने के लिए मन को, इन्द्रियो को नही जाने दूँगी।"

"मदनरेखा, किसी भी रोग को दूर करने से पहले उसका निदान आवश्यक है। जानना यह है कि रोग का लक्षण क्या है? किस विकृति के कारण रोग पीड़ित कर रहा है? जब इतना ज्ञात हो जायगा तो उस रोग के लिए औषधि अपने आप निकल आयेगी। फिर रोग के दूर करने मे समय भी नही लगेगा। क्या तुम रोग का निदान जानती हो?"

"महात्मन्! यह तो आप जैसे कुशल वैद्य ही बता सकते है। इसलिए निदान पर प्रकाश डालिए।"

"तुमने बताया कि मनुष्य के मन और इन्द्रियो के सहयोग से समय-समय पर उभर आने वाले विषय-वासना और काम-भोग कीचड है। यह भी स्पष्ट है कि उनकी ओर बलात् आकृष्ट हो जाना इन्द्रियो का स्वभाव है। तुम्हे जानना होगा कि इनके लक्षण क्या है ? क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार रूपो मे हमारे मन की विकृति प्रकट होती है। काम से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से मूढता आती है, मूढता से अहकार आता है और एक सम्मोहन की विचित्र मायात्मक स्थिति आदमी के समक्ष उपस्थित हो जाती है। किसी वस्तु को देखकर उसे पाने के लिए लालायित हो जाना लोभ है। यह भी स्पष्ट है कि ये सब भौतिक वस्तुएँ हैं और इनका शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श हम तभी तक अनुभव कर पाते है, जब तक हमारी चेतना पर भौतिक वस्तुओ का सम्मोहन लगा हुआ है। यही सम्मोहन की अवस्था जव टूट जाती है तब मनुष्य अपनी दिव्य दृष्टि से यथार्थ का दर्शन करने लगता है। आत्मा के मल दूर हो जाते है और चित्त शुद्ध प्रकाश और आनन्द मे तिरने लगता है। इसी का नाम है आत्म-बोध। किन्तु भौतिक स्थिति से इन्द्रियो को शीघ्र छुडा पाना बड़ा कठिन कार्य है। गहन अँधेरे को एकाएक अखण्ड प्रकाश मे बदल देना है। इसके लिए आत्मा में जो प्रसुप्त दीपक है उनको जलाकर अपने को टटोलना पड़ता है। मन को झकझोरना पड़ता है कि कही वासना

कोई अश शेष तो नही रह गया है ? यदि एक छोटे से छोटा वासना का अश भी कही चित्त मे रह गया तो धीरे-धीरे वही बढकर विराट रूप ले लेगा। मन को धीरे-धीरे शिथिल करते-करते उसे रुग्ण बना देगा और अनन्त समय का सचित पुण्य-सयम पल मात्र मे जलकर राख हो जायगा। इसलिए सावधान होकर मन और इन्द्रियो की दिशा बदल देना ही वैराग्य है और जब उनकी दिशा बदल जाती है तो उनकी शक्ति अनन्त गुनी हो जाती है और तब ही आत्मा मोक्ष के उन्नत मार्ग पर चलकर लक्ष्य तक पहुँच जाती है।"

"धन्य है गुरुदेव ! आप ज्ञान के पुज है। आपने मेरे नेत्र खोल दिये, अब मेरे लिए मार्ग निर्देश कीजिए ?"

"मदनरेखा ! अब तुम सयम के मार्ग पर चल सकती हो। मेरी मगलकामना तुम्हारे साथ है।"



: चौबीस :

मदनरेखा और मुनिराज का वार्तालाप चल रहा था। पास मे ही बैठा हुआ मणिप्रभ भी उनके वार्तालाप को सुन रहा था। इतने मे किसी देव विमान की ध्वनि सुनाई पडी। देखते ही देखते विमान धरती पर उतरा। उसमें से एक तेजस्वी देव निकलकर आया। उसके मुख की कान्ति से अपूर्व तेज फूट रहा था। उसका मुखमण्डल सूर्य की भाँति चमक रहा था, ललाट पर किसी भी प्रकार की चिन्ता की रेखाएँ नही थी। वह प्रसन्न था। देव ने पहले मदनरेखा को नमस्कार किया और फिर मुनिराज को वन्दना-नमस्कार करके, सुख-साता पूछकर बैठ गया। उसके इस लोक-विपरीत व्यवहार को देखकर लोगो को बहुत आश्चर्य हुआ—एक देव पच महाव्रतधारी, सयमी, मुनिराज से पहले मदनरेखा को वन्दना कर रहा है। लोग सोचने लगे—यह भी इस महासुन्दरी के सौन्दर्य का दास हो गया है और भूल गया है कि लोक मर्यादा भी कोई अर्थ रखती है। मणिप्रभ भी अपने मन मे कहने लगा—'इस सुन्दरी ने मेरा मन तो भ्रमित किया ही पर यह देव भी इसकी सुन्दरता से सभ्रमित हो गया है। वास्तव मे सौन्दर्य की महिमा अपार है।'

ज्ञानी मुनि ने सबके मन की भावना को जान लिया। वे कहने लगे—"आप लोगो को महान् आश्चर्य हुआ है कि मुनि को वन्दना करने से पहले देव ने मदनरेखा को वन्दना क्यो की ? आप लोग नही जानते कि इस सती ने इस देव पर कितना बड़ा उपकार किया है ? इसी की सहायता से इसे देवयोनि प्राप्त हुई है। देव-भव पाने से पहले यह मदनरेखा का पति था—इसका नाम था युगबाहु। जब मदनरेखा के सौन्दर्य पर मोहित होकर इसका प्राणान्त करने के लिए मणिरथ ने इसके सिर पर तलवार चलाई, तब यह आहत होकर गिर पडा। प्रतिशोध की आग इसके भीतर जलने लगी। राग-द्वेष के वशीभूत होकर यह अनाप-शनाप बकने लगा। किन्तु मदनरेखा ने इसे सान्त्वना देकर धर्मोपदेश सुनाया, जिससे इसका चित्त शान्त हुआ और सभी जीवो के प्रति क्षमाभाव रखकर इसने देव-भव प्राप्त किया। देव-भव मे जन्म लेते ही इसने अपने ज्ञान की सहायता से पूर्व-भव का वृत्तान्त जाना और देव-योनि की प्राप्ति के लिए मदनरेखा को कारण मानकर उसके प्रति आभारी हुआ और जब इसे ज्ञात हुआ कि मदनरेखा सकट मे पडी है तब इसकी सहायता के लिए यहाँ आ पहुँचा है। अत. तुम अपने मन के सारे द्वन्द्वो से मुक्त हो जाओ।'

उपस्थित लोगो ने मदनरेखा का उपकार मानने वाले देव की भूरि-भूरि प्रशसा की। मणिप्रभ विद्याधर के मन

की शंका भी दूर हुई। लोगो ने मणिरथ के सम्बन्ध मे जानने की जिज्ञासा प्रकट की कि मदनरेखा के यहाँ चले आने के बाद अपने सहोदर के हत्यारे मणिरथ की क्या दशा हुई ? उपस्थित जनता की हृदयगत शका का समाधान करने के लिए मुनिराज ने कहना प्रारम्भ किया—अपने भाई के सिर पर तलवार का प्रहार करके मणिरथ भागा किन्तु युगबाहु के सामन्तो ने उसे रोक लिया। जब मणिरथ युगबाहु के सामन्तो के घेरे से निकलने का प्रयत्न करने लगा, भारी कोलाहल मच गया। उस समय युगबाहु तलवार के विष के प्रभाव से तडप रहा था। उसे धर्मोपदेश सुनाने के लिए इस सती ने सबको शान्त किया और मणिरथ को छोड देने की आज्ञा दी। मणिरथ सामन्तो से छूटकर भागा, किन्तु उसके मन मे अपने कुकृत्य के लिए पश्चात्ताप जाग्रत हुआ। वह कहने लगा—'हाय, जिस भाई के भविष्य के बारे मे मै इतने सपने देखा करता था, उसकी हत्या कर डाली, वह भी धोखे से। मैं इस पृथ्वी का महान् पापी हूँ, मुझे जीवित रहकर पापाचार बढाने का कोई अधिकार नही। अच्छा होता यदि युगबाहु के सामन्तो ने मेरी हत्या कर दी होती। मदनरेखा ने अपकार का बदला उपकार से देकर मुझे नरक की घोर यातना सहने के लिए छुडा दिया है। अब मैं अपना कलकित मुंह किस प्रकार लोगो को दिखाऊँगा। मैं प्रजा को छोटे से छोटे अपराध के लिए दण्ड देता हूँ, प्रजा मुझे न्यायप्रिय शासक

मानती है, जवकि स्वय मैंने इतना वड़ा अपराध कर डाला। धिक्कार है मेरी वीरता को। अब भला इसी मे है कि जिस तलवार से मैंने भाई की हत्या कर डाली उसी से अपना गला भी काट लूं।'

मणिरथ इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ जा रहा था कि उसके हाथ से घोडा छूट गया। उसने आत्महत्या का दृढ़ निश्चय कर लिया था। इतने मे वीरसिंह नामक अंगरक्षक मणिरथ के पास आ पहुँचा। उस समय युगवाहु के शवदाह की तैयारी हो रही थी और मदनरेखा के वहाँ से भाग जाने का समाचार भी मिला। उसकी खोज भी होने लगी। जब मदनरेखा नही मिली तो वीरसिंह इस विचार से महल की ओर चला कि गर्भवती युवराज्ञी शायद अपने महल मे चली गई हो, किन्तु रास्ते मे मणिरथ पश्चात्ताप करता हुआ मिल गया। उसके स्वर को पहचान कर वीरसिंह उसके पास गया और यह जानते देर न लगी कि घोर पश्चात्ताप के कारण मणिरथ आत्म-हत्या के लिए तैयार है। उसने आगे वढकर मणिरथ का हाथ पकड़ लिया और कहने लगा—"महाराज! आप यह क्या कर रहे है? मानता हूँ आपसे भयकर अपराध हो गया है, किन्तु आत्महत्या कर लेने से यह मिट ता नही जायेगा? वल्कि एक पाप के ऊपर यह दूसरा पाप होगा। आपके पश्चात्ताप का मार्ग दूसरा है। आपके छोटे भाई तो स्वर्ग सिधार गये किन्तु उनके पुत्र कुमार चन्द्रयश

विद्यमान है। आप उनके सामने अपने पापों के लिए पश्चात्ताप कर क्षमायाचना करे। कुमार चन्द्रयश वीर-हृदय और उदार हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है, वे आपको अवश्य क्षमा कर देगे।"

मणिरथ ने भरे गले से कहा—"भाई वीरसिह, मेरे जैसे पापी को मत रोको, मुझे मर जाने दो। मैंने इतना बडा अपराध किया है जिसका सिवाय मृत्यु के कोई दूसरा दण्ड ही नही। मैंने कुमार चन्द्रयश के पिता की हत्या की है, उसे अनाथ कर दिया है। अब किस मुख से उसके सामने जाऊँ? मेरा इतना बडा अपराध वह कभी भी क्षमा नही कर सकता। दूसरी बात यह है कि मैं क्षत्रिय हूँ, किसी के सामने मैंने आज तक दीनता नही दिखाई है, फिर चन्द्रयश के सामने इतना दीन होकर कैसे जा सकता हूँ? क्या इन तुच्छ प्राणो की भिक्षा माँगने के लिए तुम मुझसे कहते हो। ऐसा कदापि नही हो सकता है। क्षत्रिय-पुत्र को अपनी आन प्यारी होती है, प्राण नही। वह आन के लिए ही जीता है और आन के लिए मर जाता है। यदि चन्द्रयश ने मुझे क्षमा कर भी दिया तो भी मैं अपने आपको क्षमा नही कर पाऊँगा। पश्चात्ताप की अग्नि मे झुलसते-झुलसते तग आकर एक-न-एक मुझे आत्महत्या करनी ही पडेगी।"

यह कहते हुए वीरसिह के हाथ से अपना हाथ छुड़ाकर

मणिरथ आत्महत्या के लिए तलवार सम्भालने लगा, किन्तु वीरसिंह ने उसके हाथ से तलवार छीन ली और कहने लगा—"यदि आप कुमार से क्षमा नही माँगना चाहते तो वे स्वय आकर आपको ले जायेगे। थोडी देर प्रतीक्षा कीजिए, मैं अभी कुमार को बुला लाता हूँ।"

वीरसिंह कुमार चन्द्रयश को लाने के लिए चला गया। मणिरथ अपने मन मे कहने लगा—'अपराध मैं करूँ और कुमार को मेरे पैर पडना पडे, यह कहाँ का न्याय है। कुमार के आने से पहले ही मुझे कही और चला जाना चाहिए।' यह सोचते हुए वह दूसरे रास्ते से वन की ओर चल पडा। रात अँधेरी थी। वह बडबड़ाता हुआ जा रहा था। अपने विचारो मे खोया हुआ मणिरथ चल ही रहा था कि उसका पैर एक विषैले सर्प के फन पर पड़ गया। उस सर्प ने उछलकर मणिरथ को काट खाया। सर्प के काटते ही वह अचेत होकर गिर पडा। उसकी बुद्धि मे परिवर्तन आया और सोचने लगा—'मदनरेखा के सौन्दर्य का मोल चुकाने के लिए यदि मैने युगबाहु की हत्या कर ही डाली तो इसमें क्या अपराध हुआ? मनोवाछित वस्तु को येन-केन-प्रकारेण प्राप्त करना वीर क्षत्रिय का धर्म है। वह मेरे और मदनरेखा के बीच दीवार बन गया था।' धीरे-धीरे इसी मन स्थिति मे मणिरथ पीड़ा से छटपटाने लगा। वह पीडा मे बोल रहा था—'मदनरेखा! सर्प ने मुझे काट लिया। अपने प्रेममय दो बोल की संजीवनी एक

बार आकर पिलाओ। मणिरथ पुनः जीवित हो उठेगा, दोनों राज-भोग करेंगे। युगबाहु को तो मैंने मार ही डाला। अब कुमार चन्द्रयश हमारे बीच किसी प्रकार की बाधा नही बन सकता। प्रेमिका अपने प्रेमी से मिले, इसमे किसी भी मर्यादा की अवहेलना नही होती। तुम दुनिया के सारे बन्धन तोडकर एक बार मेरे गले से लग जाओ। यदि मुझे जीवित देखना नही चाहती तो तुम्हारी बाँहो में खुशी-खुशी मर सकता हूँ मदनरेखा·· ····!!!' इन्ही कुविचारो के साथ मणिरथ के प्राण-पखेरू उड़ गये। बेचारे पृथ्वीपति की वाणी सुनने वाली कोई मदनरेखा वहाँ नही थी। तलवार हाथ से छूटकर दूर जा पडी। मरते समय की दुर्भावनाओ के कारण मणिरथ ने धूमप्रभा नामक पाँचवी नरक मे अपने पापो का फल भोगने के लिए जन्म लिया।

वीरसिंह कुमार चन्द्रयश को लेकर वहाँ आया जहाँ मणिरथ को छोड़कर गया था। कुमार अपने मन मे सोच रहा था—'पिता की मृत्यु तो हो ही गई और पितृव्य (पिता के भाई) भी आत्महत्या करने पर तुले हुए है। यदि उन्होने ऐसा कर लिया तो महान् अनर्थ होगा। मैं अनाथ हो जाऊँगा और सारा परिवार नष्ट हो जायेगा।' यह सोचता हुआ कुमार उस स्थान पर पहुँचा किन्तु मणिरथ कही भी दिखाई नही दिया। खोज करने पर कुछ दूरी पर उसका शव मिला। चन्द्रयश विलाप करने लगा।

सामन्तों ने उसे धैर्य देकर समझाया-बुझाया। मणिरथ और युगबाहु की अन्त्येष्टि क्रिया कुमार चन्द्रयश के हाथ से हुई।

"महामात्य सहस्रबुद्धि और अन्य सामन्तो ने मिलकर कुमार चन्द्रयश को राजपद दिया किन्तु माता-पिता के अभाव मे कुमार का मन बिलकुल नही लगता था। वह मदनरेखा के लिए वडा व्याकुल हुआ, जगह-जगह खोज कराई गई किन्तु किसी भी तरह मदनरेखा का समाचार न मिलने से वह वड़ा दु खी है। वह अब भी मदनरेखा की खोज करा रहा है।" मुनिराज ने फरमाया।

सब लोगो ने मदनरेखा की सराहना की। इतनी वडी सती-साध्वी स्त्री, धर्म की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। मणिप्रभ विद्याधर भी मदनरेखा के सामने नतमस्तक हो गया। सब लोग मुनिराज को वन्दना-नमस्कार कर अपने घर जाने लगे। मणिप्रभ भी जाने के लिए तैयार हुआ। मुनि को वन्दना करके वह मदनरेखा के पास गया और प्रणाम करके कहने लगा—"वहन ! आपने मेरा वहुत वडा उपकार किया है। आपने मेरी आँखें खोल दी। मुझे घोर नरक मे वचा लिया। आप मुझे आशीर्वाद दीजिये कि भविष्य मे कभी मैं धर्म-मार्ग से च्युत न होऊँ।"

"भाई ! आपने जितना उपकार मेरे साथ किया है,

उसका वदला मैं कैसे दे सकती हूँ। आपका हृदय वहुत विशाल है।"

देव वोला—"तुम दोनो एक-दूसरे की प्रशसा छोडकर इन मुनि महाराज का यशोगान करो जिसकी कृपा से तुम दोनो की रक्षा हुई।"

दोनो ने नतमस्तक होकर महामुनि के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। मणिप्रभ ने मुनि को वन्दना की तथा देव और मदनरेखा से विदा लेकर अपने महल की ओर चल दिया। इधर मुनिराज भी सवको मगल पाठ सुनाकर पुन ध्यान मे लीन हो गये।



: पच्चीस :

मणिप्रभ के वैताढ्यगिरि की ओर प्रस्थान करने के पश्चात् देव ने मदनरेखा से कहा—"आपने मेरे ऊपर बहुत बडा उपकार किया है। यह देव-भव आपकी ही कृपा का फल है। यदि आपने प्रयत्न नही किया होता तो आज जहाँ मैं देव-योनि के सुखो का भोग कर रहा हूँ वहाँ नरक की भयकर यातनाये भोगता रहता। मैं आपके ऋण से कभी भी उऋण नही हो सकता। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइये।"

देव की बात सुनकर मदनरेखा ने कहा—"इन मुनिराज का उपदेश सुनकर मैंने संसार-व्यवहार से निकलकर सयम लेने का निश्चय कर लिया है। अपना शेप जीवन मैं तप और त्याग मे व्यतीत करना चाहती हूँ। किन्तु इससे पहले कि मैं संसार की माया से पूर्णतया विरक्त हो जाऊँ, मेरी इच्छा है कि एक वार अपने उस अगजात को देख लूँ जिसके लिए मैं मातृधर्म नही निभा सकी। आप तो जानते ही हैं, उस वालक को मिथिलापुरी के राजा पद्मरथ अपने घर ले गये है। उनकी धर्मपत्नी महारानी पुष्पावती मेरी जगह उस वालक का लालन-पालन कर रही है। मिथिलानगरी एक धर्म-क्षेत्र है, वह

तीर्थंकर श्री मल्लिनाथजी और सती सीताजी की जन्मभूमि है। वहाँ कोई-न-कोई साध्वी होगी ही, अपने पुत्र का दर्शन करने के पश्चात् मै प्रव्रजित हो जाऊँगी। मुनिराज के द्वारा यह भी ज्ञात हो गया है कि मेरा बडा पुत्र राज-गद्दी पा गया और बडी कुशलता से मेरी खोज भी करा रहा है किन्तु राजमाता बनने की मेरी इच्छा नही है।"

"देवी आप धन्य है। आपने अपने गार्हस्थ्य धर्म का पालन सफलतापूर्वक किया है। अब आप अपना शेष जीवन सयम मे बिताना चाहती हैं, यह बडे हर्ष की बात है। आप अवश्य धर्म-मार्ग पर चलिए। इसी मे जीवन की सार्थकता है।"

मदनरेखा और देव दोनों विमान मे बैठकर मिथिला की ओर चले। मार्ग मे मदनरेखा ने अपना वन मे भाग आना, वन मे ही पुत्र को जन्म देना, हाथी द्वारा उछाली जाना और मुनि की सेवा मे उपस्थित होना आदि सारे वृत्तान्त देव को सुनाये। देव ने मदनरेखा से पूछा—"यह विमान आपको कैसा लगा ? क्या विमान की सजावट और इसमे लगे हुए बहुमूल्य रत्नो को देखकर आपका मन तनिक भी आकर्षित नही होता ?"

"पुण्य का जो भी फल होता है, वह कितना मधुर होता है, यह सब जानते है। यह देव-विमान तो धर्म का फल है। इसलिए मेरा मन अभी धर्म की ओर आकर्षित

हो रहा है, विमान की ओर नही। यदि विमान के सौन्दर्य पर मोहित होकर उसे पाने की इच्छा करू तो धर्म भूल जाऊँगी और मैं तुरन्त विमान से नीचे गिरा दी जाऊँगी। इसमे जितने भी रत्न जडे है सबमे संयम की ज्योति है वही मेरी आँखों मे बसी हुई है।"

"आप धन्य है। धर्म ही तीनो लोको में ऋद्धियों और सिद्धियों का दाता है। इसलिए जो धर्म-मार्ग पर चल पडा है, ये सब भी स्वय ही उसके पीछे-पीछे चल पडती हैं।"

विमान मिथिलापुरी के समीप उतरा। देव ने पूछा—"देवी, इस मिथिलापुरी मे एक ओर साध्वियाँ हैं और दूसरी ओर राजा पद्मरथ का महल है जिसमें आपका पुत्र है। पहले किस ओर चलना है? पहले पुत्र का मुख-चुम्बन कर अपने मन का दुःख भूलना चाहती है या पहले साध्वियो का दर्शन कर अपने जीवन को सार्थक चाहती है?"

मैं पहले, जीवन को सार्थक बनाना चाहती हूँ। हो सकता है पुत्र को देखकर मेरे तन-मन पर माया का आवरण चढ जाय। धर्म की सहायता से ही कठिन से कठिन परिस्थितियो से मै बच निकली हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि जो धर्म की रक्षा करता है, उसकी रक्षा के लिए धर्म भी हर परिस्थितियों मे तैयार रहता है। इसलिए मुझे साध्वीजी के पास ही ले चलिये।"

मिथिलापुरी मे महासती सुदर्शना नामक आर्या विराजमान थी। उन्होने जैन-धर्म के महान् तत्त्व, ज्ञान, दर्शन, चारित्र को अपने जीवन का आधार बनाया था। श्वेत-वस्त्र और तेजोमय मुख पर मुख-वस्त्रिका धारण किये वह सहचारिणी साध्वियो को शास्त्र की वाचना दे रही थी। मदनरेखा और देव महासती सुदर्शना के पास पहुँचे। विधिवत् वन्दना-नमस्कार करने के पश्चात् मदन-रेखा ने महासती जी से प्रार्थना की—"सती शिरामणि ! आप मुझे जन-धर्म का उपदेश दीजिए।"

"बहन ! जैन-धर्म का सन्देश है कि ससार के सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नही। इसलिए किसी भी जीव की हिसा नही करनी चाहिए, और हिसा ही सबसे बड़ा पाप है। सोते-जागते, रात-दिन कभी भी किसी प्राणी की हत्या न करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। इसी को जैन-दर्शन मे अहिसा कहा है।

"असत्य से ससार मे वडे-वड़े अनर्थ हो जाते है। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति पर से विश्वास उठ जाता है। अत जैन-धर्म ने ससार को सत्य का निर्देश दिया है।

"किसी की वस्तु विना पूछे नही लेनी चाहिए। यदि कोई बिना पूछे लेता है तो उसे चौर्य-कर्म का दोष लगता है। अत जैन-धर्म अचौर्य-व्रत के पालन की प्रेरणा प्रदान करता है।

"अब्रह्मचर्य अधर्म का मूल है और महान् दोषो का स्थान है। इसीलिए जैन-धर्म मे मैथुन को वर्जित बताया है। ब्रह्मचर्य की साधना उच्च कोटि की साधना है। जो इस दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसके चरणो मे देव भी नमस्कार करते है।

"वस्तु के प्रति रहे हुए ममत्व-भाव को परिग्रह कहा है। परिग्रह से अनेक प्रकार के अनर्थ होते है। इसलिए जैन-धर्म ने अपरिग्रह-व्रत का विधान किया है।

"उक्त सिद्धान्तो को पच महाव्रत कहा जाता है। जो मनुष्य मन, वचन, काया से इन पंच महाव्रतो का पालन करता है, वही निर्ग्रंथ धर्म (जैन-धर्म) मे दीक्षित होने का अधिकारी है।"

"महासतीजी ! आपके उपदेश ने मेरे हृदय मे सोये हुए सत्भावो को जगा दिया। उनका जीवन कितना महान् है जो सासारिक भोगो के जजाल से निकलकर सयम मे प्रव्रजित होते है। मैं पच महाव्रतो के पालन के लिए तैयार हूँ इसलिए आप मुझे दीक्षा दीजिये।"

"वहिन, सयम लेने से पहले मन मे किसी प्रकार की कामना शेष नही रहनी चाहिए। यदि कोई वासना शेष रह जाती है तो उसके प्रभाव से साधक कभी भी सयम से च्युत हो सकता है। इस बात को भली प्रकार सोच लो।"

"अति निकट से वासनाओ को देखा है, आर्ये ! उनमे कोई सार नही, सब क्षणिक, अतृप्त और अधम है ।"

"ठीक है, अभी तुम मेरे साथ कुछ दिन रहकर सयम पालन का अभ्यास करो, धार्मिक विधि-विधानो को पूरी तरह समझ लो, उसके बाद तुम्हारे स्वजनो की आज्ञा से दीक्षा दी जा सकती है ।"

"मेरे मन मे अब कोई इच्छा शेष नही है आर्ये ! जिसकी पूर्ति की मैं प्रतीक्षा करूँ । यदि आपका आदेश है तो मैं कुछ दिन आपके सान्निध्य मे रहकर धर्म के विधि-विधानो को जान लेती हूँ, फिर मैं दीक्षा ले लूँगी । जहाँ तक स्वजनो की आज्ञा का प्रश्न है, उसके लिए मेरे साथ आये हुए ये देव है । इनकी आज्ञा ही पर्याप्त होगी ?"

"आर्ये ! मदनरेखा की इच्छा आपकी शिष्या बनने की है, अत. आप इन्हे दीक्षा दीजिए । आप जैसी सयम पालने वाली सती के सम्पर्क से लौह-जीवन स्वर्ण बन जायेगा । आप कृपा कीजिए ।" देव ने विनीत स्वर मे कहा ।

"अच्छा, मैं इस पर विचार करूँगी ।" कुछ समय के पश्चात् साध्वीजी ने कहा—"मदने ! जाओ, मिथिलापुरी को घूम-घूमकर देखो । यहाँ हीरे-मोतियो की सजी हुई दुकाने हैं । अनेक सौन्दर्य प्रसाधन हैं । नाना प्रकार के स्त्री-पुरुष अपनी सुन्दर वेश-भूषा मे घूमते हैं, फिर जिसकी ओर तुम्हारा मन आकर्षित हो उसकी सही सूचना मुझे देना ।"

मदनरेखा औपचारिकता की दृष्टि से मिथिलापुरी को देखने के लिए निकल पडी। उसने सब कुछ देखा किन्तु ऐसा कुछ भी दिखाई नही दिया जिसे सुदर्शनपुर मे उसने देखा न हो। वह लौट आई विना किसी वस्तु की इच्छा के। "आर्ये! मानती हूँ मिथिला मे अपार वैभव है किन्तु उन सवके वीच मुझे कोई ऐसी वस्तु दिखाई नही पड़ी जिसकी ओर मेरा मन आकर्षित हो। वाजार मे जितनी वस्तुएँ है सवको मैं देख चुकी हूँ। बहुतो का उपभोग भी मैंने कर लिया और जिनका उपभाग नही कर पाई हूँ उन्हे किसी-न-किसी दुर्गुण भरे होने के कारण त्याग दिया है। इसलिए मैं पुनः मिथिला के सौन्दर्य को नही देखना चाहती।"

"अच्छा मदने! सन्ध्या हो गई है। जो कुछ तुम्हे खाने-पीने की वस्तु लेना हो सूरज डूबने से पहले ले लो। फिर तुम्हे हमारी नित्य क्रिया के अन्तर्गत की जाने वाली क्रिया 'प्रतिक्रमण' को देखना होगा। उस समय हम अपने दिन भर के जाने-अनजाने किये गये पापो की आलोचना करेगी और सभी जीवो से क्षमा मांगेगी और उन्हे शुद्ध अन्त करण से क्षमा देगी।"

इस प्रकार विदुषी साध्वी के नेतृत्व मे मदनरेखा कुछ ही समय मे अपनी विचक्षण बुद्धि के द्वारा धार्मिक अनुष्ठान (क्रिया) व शास्त्र-अध्ययन मे पारगत हो गई।



: छब्बीस :

आज मदनरेखा जैन-धर्म मे भागवती दीक्षा अंगीकार करेगी। मिथिला मे धर्म का अपूर्व उल्लासमय वातावरण दिखाई दे रहा है। सबके हृदय मे एक कौतूहल है—एक राज-परिवार की स्त्री एकाएक मोह-माया के बन्धनो को तोड़कर सयम में प्रव्रजित हो जायेगी। नगर मे एक शोभा यात्रा निकली जिसमे मदनरेखा के पीछे-पीछे नगर के हजारो नर-नारी थे। 'जैन-धर्म की जय', 'अहिंसा धर्म की जय' आदि नारो से शोभा-यात्रा पूरे नगर मे भ्रमण कर उस स्थान पर पहुँची जहाँ दीक्षा-विधि का सम्पादन होना था।

केसर द्वारा शुभ चिह्नित वस्त्र पहनकर मदनरेखा अपनी गुरुणी महासती सुदर्शना के सम्मुख उपस्थित हुई। उसके मुख पर मुख वस्त्रिका सुशोभित हो रही थी और हाथ में झोली मे रखा हुआ भिक्षा-पात्र व बगल मे रजो-हरण था। सिर के काले घुंघराले बाल काट दिये गये थे। यही उसका वेष था जिसमे उसे सयमित जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। नमस्कार-मन्त्र के साथ दीक्षा-विधि प्रारम्भ हुई। महासती सुदर्शना के सामने मदनरेखा ने प्रतिज्ञा की—

"धर्म की शरण मे जाती हूँ, अरिहन्त की शरण मे जाती

हूँ, सिद्धों की शरण में जाती हूँ, साधुओ की शरण में जाती हूँ।" महासती सुदर्शना ने चेतावनी दी—"याद रखो। अब जिन शरणो मे चली गई हो, उनसे पुन. लौटना नही होगा। बोलो, मन दृढ है ?"

मदनरेखा ने प्रत्युत्तर दिया—"आर्ये! पूर्णतया दृढ हूँ।"

महासती सुदर्शना ने प्रतिज्ञा कराई—"बहन सकल्प करो।"

"भन्ते ! मैं सर्व प्राणातिपात (हिसा) का प्रत्याख्यान करती हूँ। सूक्ष्म या स्थूल, त्रस या स्थावर जो भी प्राणी है, उनके प्राणो का अतिपात मैं स्वयं नही करूँगी, दूसरों से नही कराऊँगी और अतिपात करने वालों का अनुमोदन भी नही करूँगी। जीवन भर के लिए तीन करण, तीन योग से, मन से, वचन से, काया से—न करूँगी, न कराऊँगी और न करने वाले का अनुमोदन ही करूँगी।"

"भन्ते ! मैं अतीत मे किये प्राणातिपात से निवृत्त हूँ, उसकी निन्दा करती हूँ, गर्हा करती हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करती हूँ।"

"भन्ते ! मैं पहले महाव्रत मे प्राणातिपात (हिंसा) की विरक्ति के लिए उपस्थित हुई हूँ।"

"भन्ते ! मैं सर्व मृषावाद (झूठ) का प्रत्याख्यान करती

हूँ। क्रोध से या लोभ से, भय से या हंसी से, मैं स्वय असत्य नही बोलूंगी, दूसरो से असत्य नही बुलवाऊंगी, और असत्य बोलने वाले का अनुमोदन भी नही करूँगी। जीवन-भर के लिए तीन करण, तीन योग से—मन से, वचन से, काया से—न करूँगी, न कराऊँगी और करने वालो का अनुमोदन भी नही करूँगी।"

"भन्ते ! मैं अतीत के मृषावाद से निवृत्त होती हूँ, उसकी निन्दा करती हूँ, गर्हा करती हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करती हूँ।"

"भन्ते ! मैं दूसरे महाव्रत मे मृषावाद (असत्य) की विरक्ति के लिए उपस्थित हुई हूँ।"

"भन्ते ! मैं सर्व अदत्तादान (चौर्यकर्म) का प्रत्याख्यान करती हूँ। गाँव में, नगर मे या अरण्य में कही भी अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त किसी भी अदत्त वस्तु का मैं स्वयं ग्रहण नही करूँगी, दूसरों से अदत्त वस्तु का ग्रहण नही कराऊँगी और अदत्त वस्तु ग्रहण करने वालों का अनुमोदन भी नही करूँगी। जीवन-भर के लिए तीन करण, तीन योग से—मन से, वचन से, काया से न करूँगी, न कराऊंगी और करने वाले का अनुमोदन भी नही करूँगी।"

"भन्ते ! मैं अतीत के अदत्तादान से निवृत्त होती हूँ, उसकी निन्दा करती हूँ, गर्हा करती हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करती हूँ।"

"भन्ते ! मैं तीसरे महाव्रत में सर्व अदत्तादान (चोरी) की विरक्ति के लिए उपस्थित हुई हूँ।"

"भन्ते ! मैं सव प्रकार के मैथुन (कुशील) का प्रत्याख्यान करती हूँ। देव सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धो अथवा तिर्यंच सम्बन्धी मैथुन का मैं स्वय सेवन नही करूँगी, दूसरों से मैथुन-सेवन नही कराऊँगी और मैथुन सेवन करने वालो का अनुमोदन भी नही करूँगी। जीवन-भर के लिए तीन करण, तीन योग से—मन से, वचन से, काया से न मैथुन का सेवन करूँगी, न कराऊँगी और करने वाले का अनुमोदन भी नही करूँगी।"

"भन्ते ! मैं अतीत के मैथुन-सेवन से निवृत्त होती हूँ, उसकी निन्दा करती हूँ, गर्हा करती हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करती हूँ।"

"भन्ते ! मैं चौथे महाव्रत मे सर्व-मैथुन की विरक्ति के लिए उपस्थित हुई हूँ।"

"भन्ते ! मैं सव प्रकार के परिग्रह का प्रत्याख्यान करती हूँ। गाँव मे, नगर मे या अरण्य मे, कही भी अल्प या वहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त किसी भी परिग्रह का ग्रहण मैं स्वय नही करूँगी, दूसरो से परिग्रह का ग्रहण नही कराऊँगी और परिग्रह को ग्रहण करने वालों का अनुमोदन भी नही करूँगी। जीवन-भर के लिए तीन करण, तीन योग से—मन से, वचन से, काया से

परिग्रह न कराऊँगी, न करूँगी और करने वालो का अनु-मोदन भी नही करूँगी।"

"भन्ते ! मैं अतीत के परिग्रह से निवृत्त होती हूँ, उसकी निन्दा करती हूँ, गर्हा करती हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करती हूँ।"

"भन्ते ! मैं पांचवे महाव्रत मे सर्व परिग्रह की विरक्ति के लिए उपस्थित हुई हूँ।"

"भन्ते ! मैं सव प्रकार के रात्रि-भोजन का प्रत्याख्यान करती हूँ। अशनं, पानं, खाइम और स्वाद्य—किसी भी वस्तु को रात्रि मे मै स्वयं नही खाऊँगी, दूसरों को नही खिलवाऊँगी और खाने वालो का अनुमोदन भी नही करूँगी। जीवन-भर के लिए तीन करण, तीन योग से—मन से, वचन से, काया से न करूँगी, न कराऊँगी और करने वाले का अनुमोदन भी नही करूँगी।"

"भन्ते ! मैं अतीत के रात्रि-भोजन से निवृत्त होती हूँ, उसकी निन्दा करती हूँ, गर्हा करती हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करती हूँ।"

"भन्ते ! मैं छठे व्रत मे रात्रि-भोजन की विरक्ति के लिए उपस्थित हुई हूँ।"

"भन्ते ! मैं इन पाँच महाव्रतो और रात्रि भोजन रूपी छठे व्रत को आत्महित के लिए अगीकार कर विचरण करती हूँ।"

मदनरेखा द्वारा ये संकल्प ले लिए जाने के पश्चात् साध्वी सुदर्शना ने कहा—"मदनरेखा ! निर्ग्रन्थ-धर्म में तुम्हारी दीक्षा हो गई, अब इस धर्म के महत्व पर प्रकाश डालती हूँ—

"पच आस्रव का निरोध करने वाले, तीन गुप्तियों से गुप्त, छह काय के जीवों के प्रति संयत, पाँच इन्द्रियो का निग्रह करने वाले धीर निर्ग्रन्थ ऋजुदर्शी होते हैं।

"परीषह रूपी शत्रुओं का दमन करने वाले जितेन्द्रिय महर्षि सब दुःखों के नाश के लिए पराक्रम करते हैं।"

"जो तप, सयम-योग और स्वाध्याय-योग मे प्रवृत्त रहता है वह अपनी और दूसरों की रक्षा करने मे उसी प्रकार समर्थ होता है जिस प्रकार सेना से घिर जाने पर आयुधो से सुसज्जित वीर।"

"स्वाध्याय और सद्ध्यान में लीन त्राता, निष्पाप मन वाले और तप मे रत मुनि का पूर्व सचित कर्म-मल उसी प्रकार विशुद्ध होता है जिस प्रकार अग्नि द्वारा तपाये गये सोने का मल।"

"जो श्रमण सुख का रसिक, सुख के लिए आकुल, अकाल मे सोने वाला और हाथ-पैर को बार-बार धोने वाला होता है उसके लिए सुगति दुर्लभ है।"

"जो श्रमण तपोगुण से प्रधान, ऋजुगति, क्षमा तथा सयम मे रत और परीषहों को जीतने वाला होता है, उसके लिए सुगति सुलभ है।"

"जो नर क्रूर स्वभावी है, जिसको बुद्धि और ऋद्धि का अभिमान है, चुगलखोर है, साहसिक है, गुरु की आज्ञा का यथासमय पालन नही करता, आज्ञाधर्मी नही है, विनय मे अकोविद है तथा असविभागी है, उसे मोक्ष प्राप्त नही होता।"

"दुष्कर तप को करते हुए और दु:सह परीषह को सहते हुए उन निर्ग्रन्थो में से कई देवलोक जाते हैं तो कई मोक्ष जाते हैं।"

"जो सयम मे सुस्थितात्मा है, जो विमुक्त है, जो त्राता है उन निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थनियो के लिए आवश्यक है कि वे अकरणीय कर्मों से अपना बचाव करे।"

"मदनरेखा! तुमने भगवती दीक्षा स्वीकार कर ली है। अब तुम्हारा दूसरा जन्म भी हो चुका है। इसलिए अब तुम्हारा नाम सती सुव्रता रखा जा रहा है। साध्वी समाज मे तुम इसी नाम से सम्बोधित की जाओगी।"

सती सुव्रता ने समस्त साध्वियों की विधिवत् वन्दना की।

मदनरेखा को दीक्षा दिलाकर महासती सुदर्शना और उनकी नवदीक्षिता सती सुव्रता को विधियुक्त वन्दना-नन्दना करके वह देव अपने स्थान पर चला गया। सती सुव्रता अपनी गुरुणी महासती सुदर्शना की सेवा करती हुई उत्कृष्ट भाव से संयम-धर्म का पालन करने लगी।

: सत्ताईस :

नमिराज युवा हो गया। राजा पद्मरथ ने जब देखा कि नमिराज भली-भाँति राज्य का सचालन कर सकता है तो उनके मन में आया कि अब उसे राज-पाट सौंपकर सयम ले लिया जाय। राजा ने अपना विचार नमिराज के समक्ष रखा। मन्त्री तो इस विचार से प्रसन्न हुए किन्तु नमिराज को बहुत दु.ख हुआ। उसने पिता से प्रार्थना की—"पितृदेव! एकाएक मुझसे इतनी उदासीनता क्यो हो गई? अभी तक तो आप एक पल के लिए भी मुझे अपनी आँखों से दूर नही होने देना चाहते थे और अब स्वयं ही छोडकर चले जाने के लिए कह रहे हैं। क्या मुझसे कोई वहुत बडा अपराध हो गया है?"

"पुत्र! तुम्हारे जैसे कुलदीपक से मैं कभी भी किसी अपराध की आशा नही कर सकता। बात यह है कि जीवन के प्रारम्भ से ही मै राज-वैभव मे डूबा रहा, अब अकिंचन होकर भी तो देखना चाहिए। वाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य का पालन, युवावस्था मे गार्हस्थ्य और वृद्धावस्था मे विरक्ति, यही जीवन का क्रम होना चाहिए।"

"पर आप अभी वृद्ध कहाँ हुए? आपकी भुजाओं में तो अभी उतनी ही शक्ति देखता हूँ, आँखो में आशा की

वही किरणे है। वार्धक्यजन्य निराशा और निर्बलता तो आपको अभी छू भी नही सके हैं।"

"नमिराज ! जब अपना पुत्र युवा हो जाय तो माता-पिता को अपने आप को वृद्ध मान ही लेना चाहिए। राज्य करने या शासन चलाने से मुक्त हो जाना चाहिए क्योकि युवा-हृदय मे अपने अधिकारो के प्रति चेतना आती है और यदि उसे दिशा न मिली तो वह उच्छ्ंखल हो जाता है। इसलिए मुझे संयम लेने के लिए आज्ञा दो।"

"पिताजी ! आज तक आप मुझे आज्ञा देते रहे, अब मैं आज्ञा दूँ ?"

"हाँ नमिराज ! पुत्र के जवान होने पर पिता उसके अधीन हो जाता है। तुम हित-अहित का विचार कर सकते हो। अब मिथिला के राजा तुम हो। इसलिए मुझे आज्ञा दो।"

"पिताजी !!"........ .....

नमिराज को मिथिला का राजा बना दिया गया। पिता के निर्देशों और सुझावो के अनुसार वह राज-काज भली-भाँति चलाने लगा। प्रजा उससे प्रसन्न थी। मन्त्री और सामन्त उसके अनुकूल थे। एक दिन मिथिला मे एक स्थविर मुनि अपनी शिष्य मण्डली सहित पधारे। पद्मरथ ने उनसे दीक्षा ले ली और अपने जीवन का मार्ग बदल लिया।

समयानुसार नमिराज का यश चारों ओर फैलने लगा। उसके शौर्य और शासन कुशलता से सभी परिचित थे। एक दिन नमिराज के यहाँ से एक मदोन्मत्त हाथी कही निकल गया। उसकी बहुत खोज हुई किन्तु वह कही भी नही मिला। कुछ दिनों वाद वही हाथी सुदर्शनपुर की सीमा में आकर उत्पात मचाने लगा। प्रजा त्रस्त होकर राजा चन्द्रयश के पास गई और पुकार की—"महाराज ! एक अत्यन्त सुन्दर मदोन्मत्त हाथी धन-जन को हानि पहुँचा रहा है, उसके उत्पात से हम दुःखी हैं। अतः हमारी रक्षा के लिए कोई उपाय किया जाय।"

राजा चन्द्रयश ने किसी प्रकार हाथी को अपने अधीन करके उसे अपनी हस्तिशाला में बँधवा दिया। धीरे-धीरे वह हाथी शान्त हो गया। कभी-कभी राजा चन्द्रयश जब उसके ऊपर सवार होकर निकलते थे तो ऐसा लगता था मानो ऐरावत पर इन्द्र विराजमान हों। ऐसे हाथी को पाकर राजा चन्द्रयश को वड़ी प्रसन्नता हुई। इधर नमिराज के सिपाही हाथी की खोज करने लगे। ज्ञात होने पर दूत राजा चन्द्रयश के पास आया। उसने नमिराज का सन्देश कहा—"यदि महाराजा चन्द्रयश हाथी को हमारे पास भेज देते हैं तो हमारे और उनके वीच मैत्री सम्वन्ध स्थापित हो जायेगा। इसके विपरीत यदि उन्होने हाथी देने से इन्कार किया तो भयकर युद्ध होगा और न जाने कौन-कौन से सकटो का सामना करना पड़ेगा।"

"युद्ध ? क्या मै युद्ध से डरता हूँ ? क्या नमिराज ने मुझे कायर समझ रखा है ? युद्ध की धमकी देकर वे कभी भी हाथी नही ले सकते। इस मतवाले हाथी को हमने वश मे किया। यदि नमिराज की भुजाओ मे इतना ही बल है तो क्या वे एक हाथी को भी वश मे नही कर सकते। अब हाथी वश मे हो गया तो युद्ध की धमकी देकर वे मुझसे वापिस लेना चाहते हैं।"

"महाराज ! हाथी ने आपके राज्य मे बहुत अपराध किया होगा किन्तु जब आदमी का अपराध भी क्षमा कर दिया जाता है तो क्या एक पशु को क्षमा नही किया जा सकता ? महाराजा नमिराज को इस हाथी से बहुत लगाव है। इसलिए इसके लिए वे सब कुछ कर सकते हैं। अतः मेरा सुझाव है कि आप उनकी ओर मित्रता का हाथ बढाइये।"

"मानता हूँ नमिराज को वह हाथी बहुत प्रिय है किन्तु आज वह जिसका प्रिय हो चुका है उसका क्या होगा ? मैं अपनी ओर से मित्रता के लिए हाथ बढाऊँ— इसकी मैं बिलकुल जरूरत नही समझता। बडे-बड़े राजाओ से मेरी मित्रता है। मैं मित्रता का कोई मूल्य देकर किसी से मित्रता करने के लिए कभी भी तैयार नही हूँ।"

"महाराज ! आपका उत्तर मैं महाराजा नमिराज की सेवा मे पहुँचा दूंगा। किन्तु इससे पहले आपसे निवेदन

करता हूँ कि फिर एक बार इस वात पर विचार कर लीजिए। यदि आपने हाथी नही लौटाया तो वे इसे अपना बहुत वडा अपमान मानेगे और इसे वे कभी भी सहन नही कर सकते। अन्देशा है कि आपकी वात सुनकर वे युद्ध की घोषणा कर दे। महाराज नमिराज के विरोध में खडा हो जाना कोई आसान वात नही है। वे केवल उसी को क्षमा कर सकते हैं जो या तो उनके सम्मुख उपस्थित होकर अधीनता स्वीकार कर ले या रणक्षेत्र में पीठ दिखाकर भाग जाय। एक छोटी-सी वस्तु के लिए इतना वडा अनर्थ कराना मुझे उचित नही जान पडता।"

दूत का कथन सुनकर चन्द्रयश की आँखें क्रोध से लाल हो गई। उसने कहा—"तुम्हारे महाराज कितने वलवान् और प्रतापी है, यह तुम्हारे कथन से मुझे ज्ञात हो गया। तुमने जो दो वाते कही उनमे से एक के लिए भी मुझे कोई भय नही है। उन जैसे कायर और दम्भी राजा से मैं कभी भी मित्रता के लिए तैयार नही हूँ और जाकर कह देना कि उन्होने सुदर्शनपुर पर आक्रमण किया तो उन्हे मुंह की खानी पड़ेगी और सुदर्शनपुर की सीमा मे आकर उत्पात मचाने का जो परिणाम हाथी को देखना पडा वही नमिराज को देखना पड़ेगा। विना सोचे-समझे किसी राजा के पौरुष को ललकारना क्या नीतिज्ञ राजा का लक्षण है। अपने मुंह से अपने गुणो की प्रशसा कायर करता है, वीर को प्रशसा के गीत तो दूसरे लोग गाते हैं

इतना बडा राज्य मै नमिराज के सहारे नही चला रहा हूँ। और भी वहुत-से दुश्मनो की आँखे मेरे राज्य पर लगी हैं, उनमे से यदि एक नमिराज भी निकल आये तो मुझे कोई भय नही है। इसलिए नमिराज से जाकर साफ-साफ कह दो कि वे अपनी वीरता का परिचय दे। युद्ध की घोषणा कर उसके परिणाम की प्रतीक्षा करें। मैं किसी भी मूल्य पर हाथी लौटाने को तैयार नही हूँ।"

राजा चन्द्रयश और दूत की वार्ता समाप्त हो गई। कोई परिणाम नही निकला। दूत ने जाकर नमिराज को राजा चन्द्रयश की बात सुनाई। नमिराज आग-बबूला हो गया—"चन्द्रयश की इतनी हिम्मत कि वह मेरे मैत्री प्रस्ताव को ठुकराता है और मेरे ही दूत के सामने मुझे कायर और दम्भी बतलाता है। बता दूँगा उसे कि एक वीर से इस प्रकार वैर मोल लेने का क्या फल होता है। यदि उसकी पीठ पर हजारो घाव नही कर दिये तो मेरा नाम नमिराज नही।"

नमिराज ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर कहा—"अपने दूत को भेजकर मैंने चन्द्रयश से हाथी लौटा देने का प्रस्ताव रखा, किन्तु उसने हाथी लौटाने के वदले मुझे युद्ध के लिए ललकारा है। अब हमे युद्ध की तैयारी करके सुदर्शनपुर पर चढाई कर देनी चाहिए। फिर देखता हूँ, चन्द्रयश किस प्रकार हाथी रख पाता है। तुम लोग जाकर आक्रमण की तैयारी करो।"

"किन्तु महाराज, राजा चन्द्रयश भी कम प्रतापी नही है। इतना वडा आक्रमण करने के पहले अच्छी तरह सोच लीजिए, कही हमे…… …।"

"कुछ नही महामात्य, बुढापे ने आपकी वुद्धि हर ली है। आप मान और गौरव को जगह दुर्बलता की बाते करने लगे हैं। युद्ध की तैयारी कराइये। मेरी भुजाएँ फड़क रही हैं। चन्द्रयश को अधीन किये विना मेरे अपमान का वदला नही मिल सकता। एक छोटा सा राज्य इतनी वडी चुनौती दे दे?"

राजा की आज्ञानुसार रणभेरियाँ वज उठी।



: अट्ठाईस :

नमिराज की सेना ने चारों ओर से सुदर्शनपुर की सीमा को घेर लिया। यह सारा काम इतनी चतुराई से हुआ कि राजा चन्द्रयश को उसका पता भी नही चला। जव चन्द्रयश को आक्रमण का पता चला तव उसने अपने मन्त्रियों को परामर्श के लिए बुलाया। महामात्य ने कहा—"महाराज! नमिराज ने वीरोचित मार्ग का त्यागकर कायरों की तरह नगर पर घेरा डाल दिया है। यदि वह वीर होता तो अपने आक्रमण की सूचना हमें देता। अब कुछ भी हो, जब शत्रु ने आक्रमण कर ही दिया तव हमे भी इसका सामना अच्छी तरह से करना चाहिए।"

"जब अपने घर में आकर शत्रु युद्ध के लिए ललकारता हो तो उससे युद्ध न करना कायरता है महामात्य! इसलिए उस पर आक्रमण कर उसकी कायरता का दण्ड देना ही चाहिए।"

"महाराज! नगर के सारे द्वार बन्द है। शत्रु की सेना अभी उत्तेजित है। इसलिए हमे इस रीति से युद्ध करना चाहिए कि शत्रु की सेना की अधिक हानि हो और

अपनी कम। साथ ही जब शत्रु की सेना शिथिल होने लगेगी तो उसे परास्त करना आसान हो जायेगा।"

महामात्य की सलाह मानकर चन्द्रयश ने सेना को सज्जित होने की आज्ञा दी। चन्द्रयश ने सैनिको को ललकारा—"अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए मर मिटने वाले ही इस पृथ्वी पर अमर होते है। वीरो! आज तुम्हारी परीक्षा की घडी आ पहुँची है। किसी के अधीन होकर जीना पाप है। स्वतन्त्रता से बढ़कर स्वर्ग का भी सुख नही है। इसलिए अपनी स्वतन्त्रता कायम रखने के लिए प्राणो की बाजी भी लगानी पड़े तो तुम पीछे मत हटना। तुम्हारे उत्साह से जनता को बल मिलेगा। एकता और अनुशासन के सूत्र मे बँधकर मातृभूमि की शक्ति को सुदृढ करो। यदि युद्ध करते-करते तुमने वीर गति भी पाई तो तुम्हारा नाम इस पृथ्वी पर अमर रहेगा। तुम्हारे पौरुप के गीत इतिहास के स्वर्णाक्षरो मे लिखे जायेंगे। दूसरी ओर यदि शत्रु को तुमने पीठ दिखाकर मातृभूमि को अत्याचारियो के हाथों मे जाने दिया तो तुम्हे दासता की भयकर वेदनाएँ सहनी पड़ेगी। तुम्हारा स्वाभिमान कुचल दिया जायगा। तुम पशु की तरह बाँध दिये जाओगे। तुम्हारे ऊपर क्रूर शासको का शासन चलने लगेगा। इसलिए अपने पौरुष को जगाकर मातृभूमि के लिए बलिदान हो जाओ।"

"जब तक हमारी शिराओ मे खून की एक बूंद भी बाकी रहेगी, हम मातृभूमि की पवित्र धरती पर दुश्मन के नापाक कदम नही पडने देगे। अपनी माँ-बेटियो की लाज बचाने के लिए हमने म्यान से तलवारे बाहर खीच ली है। हमे आपकी आज्ञा चाहिए।" सैनिक उत्तेजित हो उठे। बिजली सी हजारो तलवारे एक साथ बाहर निकल आई। सैनिकों के मुख पर स्वाभिमान की लाली प्रातः कालीन अरुण सूर्य की भाँति चमक उठी।

राजा चन्द्रयश ने सैनिकों को शान्त किया और आज्ञा दी—"दुर्ग पर चढकर शत्रु सेना पर शस्त्रों की बौछार कर दो।" अब क्या था—शस्त्रों की बौछार होने लगी। नमिराज के सैनिको के सिर कट-कटकर पृथ्वी पर गिरने लगे। देखते-देखते खून की नदी बहने लगी। प्रलय का एक भयङ्कर दृश्य उपस्थित हो गया। नमिराज की सेना का उत्साह मन्द पड गया। सन्ध्या हो आई। सभी सैन्य-शिविर मे लौटने लगे। अपने सामन्तो एव सेनानियों को परामर्श के लिए नमिराज ने बुलाया और कहा—"चन्द्रयश बिलकुल कायर है। यदि वह वीर होता तो खुद को दुर्ग मे बन्द करके सैनिको को युद्ध करने की आज्ञा नही देता। उसके दुर्ग से बाहर न निकलने से साफ-साफ लगता है कि वह हमसे भयभीत है।"

"बिलकुल कायर महाराज !" सैनिको ने नमिराज के स्वर मे स्वर मिलाया। आगे युद्ध-विधि पर विचार होने

लगा—"अब स्थिति भयकर है। शत्रु सेना मैदान में आने को तैयार नही। दुर्ग पर से ही अस्त्र चला रही है। ऐसी स्थिति मे हमारे धन-जन की अधिक हानि हो रही है। कब तक हम इस परिस्थिति में पड़े रहेगे। यदि सैनिकों के धैर्य का बाँध कही टूट गया तो वे अकुला कर भागना शुरू कर देगे। इसलिए ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे युद्ध जल्दी समाप्त हो जाय, तथा कायर चन्द्रयश के कुकृत्यो के लिए उसे दण्ड भी दिया जा सके।"

"महाराज! सैनिको मे नया उत्साह और जोश लाने के लिए आवश्यक है कि शिविर मे मनोरजन का विशेष प्रवन्ध किया जाय। इसके लिए केवल दो उपाय हैं, सुरा और सुन्दरी। सुरा और सुन्दरी के योग से बूढ से बूढ़े रक्त मे भी जवानी की लहरे दौड़ने लगती हैं। सुन्दरी की एक कटाक्ष पर ही सैनिक अपनी जान देने को तैयार हो जायेंगे।" एक सामन्त ने कहा।

"चुप रहो! तुम नही जानते कि वीरता के लिए सुरा और सुन्दरी दोनो ही घातक हैं। इनके योग से रहा-सहा पौरुष भी चला जाता है। जो अपनी वीरता को बनाये रखना चाहता है वह सुरा और सुन्दरी के पास भो न जाय। ये दोनों सिह को भी गीदड़ वना देती हैं।" महामात्य ने कहा।

"महाराज! चन्द्रयश को अपने अधीन करने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि कल नगर तथा दुर्ग

के द्वार पर आक्रमण करके उसे तोड दिया जाय। ऐसा करने पर हमारी सेना दुर्ग मे प्रवेश कर जायेगी अथवा चन्द्रयश और उसके सैनिक बाहर आने के लिए वाध्य हो जायेगे। दोनो स्थितियों में हमारी विजय निश्चित है। कल चन्द्रयश की सेना को ज्ञात हो जायेगा कि दुर्ग मे छिपे रहकर अस्त्र चलाने का क्या परिणाम होता है।" सेनापति ने कहा।

"सेनापति! आपने बहुत अच्छा उपाय वताया है। द्वार को विना तोड़े हम अपनी रक्षा नही कर सकते बल्कि हमे अधिक से अधिक हानि उठानी पड़ेगी। सैनिको के लिए द्वार तोडना कोई कठिन काम नही है। ऐसे तो क्या वज्र से बने द्वार भी ये क्षणमात्र मे तोड सकते हैं। कल अपनी सेना को यही कार्य करना है।"

"किन्तु महाराज! हम द्वार तोडने में लग जायँ और चन्द्रयश की सेना दुगुनी शक्ति से हमारे ऊपर शस्त्र वरसाने लगे तो? हमारे सारे सैनिक मारे जायेगे और हमारे वदले चन्द्रयश को विजयलक्ष्मी मिल जायेगी। इस योजना को काम मे लेने से पहले विचार कर लिया जाय।" एक सामन्त ने कहा।

"कैसी कायर जैसी बात करते हो। विलासिता में दिन-रात लगे रहने के कारण तुम लोगो की वीरता समाप्त हो गई है, तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, तुम

कायर हो गये हो। क्या हमारे सैनिक निहत्थे है ? जवाब मे वे शस्त्रों की बौछार नही कर सकते ? तुम अपनी अनर्गल बातो से सैनिकों का उत्साह कम मत करो। यदि युद्ध से डर है तो हाथो मे चूड़ियाँ पहनकर घर मे बैठ जाओ।" नमिराज ने सामन्त को फटकारा।

प्रात.काल सभी सैनिक अपने-अपने हथियारो से सज-धजकर युद्ध की तैयारी मे लग गये। घोड़े हिन-हिना रहे थे। मतवाले हाथियों के चिंघाडने से ऐसा लगता था मानो सारे बादल इकट्ठे होकर टकरा रहे हैं और उनके टकराने से बिजली की गडगड़ाहट सुनाई दे रही है। नमिराज ने अपने सैनिको को ललकारा—"वीरो ! शत्रु सेना पर सिंह की भाँति टूट पडो। अपनी वीरता दिखाकर शत्रु को अधीन कर लो और जो गर्व से अपनी छाती फुला रहा था उसे मेरे सम्मुख लाकर नतमस्तक कर दो। सुदर्शनपुर को दिखा दो कि मिथिला के वीर कितने पराक्रमी और बलवान् है। एक बात ध्यान मे रहे— निरपराध प्रजा पर किसी प्रकार का जुल्म न हो, बहू-बेटियो की इज्जत पर कोई सैनिक हाथ न डालने पाये। तुम्हें उदारता और क्षमा के साथ निरपराध लोगों की रक्षा करते हुए शत्रु-दल पर आक्रमण करना है। निहत्थे लोगो को सताना वीरता के लिए कलंक है।"

नमिराज का आह्वान और आदेश सुनकर सैनिको के

मुँह तमतमा गये। सबने एक स्वर से कहा—"महाराजा नमिराज की जय"। "मिथिला का राज्य अखण्ड हो।" शिविर से सैनिको का प्रयाण बडी तेजी से हुआ। सबके मन मे अनेको कल्पनाएँ थी। नमिराज सुदर्शनपुर के अपार वैभव और सौन्दर्य पर अपना मन लुटाये जा रहा था। वह उस दृश्य की कल्पना कर रहा था जबकि चन्द्रयश दुर्ग से निकलकर उसके सामने अपने प्राणो की भिक्षा माँगने के लिए उपस्थित होगा और हाथी के साथ बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट में लाकर देगा।

: उन्तीस :

नमिराज अपने सैनिकों को युद्ध में भेजने ही वाला था कि उसकी दृष्टि सैन्य-शिविर की ओर आती हुई दो साध्वियो पर पडी। उन्हे देखकर नमिराज को महान् आश्चर्य हुआ—"राग-द्वेप को छोडकर सयम का पालन करने वाली इन साध्वियो को युद्ध से क्या प्रयोजन!" वह उनके पास गया और विधिवत् वन्दना करके उनके दर्शन कर अपने को भाग्यवान् समझा। "आप लोग तो अहिंसा, संयम और तप का आचरण करने वाली हैं। आप लोग यहाँ कैसे आईं? भगवान महावीर ने मर्यादा भी की है कि जहाँ युद्ध हो रहा हो, वहाँ साधु-साध्वियो को नही जाना चाहिए। इस समय तो हम और चन्द्रयश दोनो एक दूसरे के प्राणो के शत्रु हैं। इस द्वन्द्व-स्थिति में आपका आगमन कैसे हुआ?"

"राजन्, तुम्हारा कथन उचित है। वास्तव मे सयम-धारी को ऐसे स्थान मे नही जाना चाहिए किन्तु किसी कारण विशेष को लेकर ही हम तुम्हारे पास आई हैं। हम युद्ध का कारण जानना चाहती हैं।"

"आप जैसी सयमधारिणी साध्वियो को जिन्होने संसार के प्रपचो से अपने को अलग कर लिया है, पुनः

इस प्रकार के झमेले में पडना शोभा नही देता। यह राजनीति का प्रश्न है और इसमें आप द्वारा किये गये सारे प्रयत्न भी प्राय. विफल हो जायेंगे। ऐसी स्थिति में आप लोग चुपचाप लौट जायँ।"

सहनशीला साध्वियों पर इस रूखे उत्तर का कोई प्रभाव नही पडा। सती सुव्रता ने बडी कोमलता से कहा—"राजन्! जान पडता है कि युद्ध का सही कारण बताने मे तुम्हे किसी प्रकार का सकोच हो रहा है, और जिस भ्रम के कारण तुम इतने बडे नरसंहार के लिए तैयार हो गये हो। शायद तुम नही जानते कि युद्ध का वह कारण जान लेने के पश्चात् ही हम इस समय तुम्हारे पास आई है। द्वन्द्व को मिटा देना साधु-साध्वी का धर्म है नमिराज! उसके साधु होने से क्या हुआ जो दूसरो को बन्धन और द्वन्द्व मे छोडकर अपनी मुक्ति कर लेता है। इस व्यक्तिगत मुक्ति से साधु जीवन का उद्देश्य पूरा नही हो जाता। हमने मानव-जाति के कल्याण के लिए संयम का व्रत लिया है। हम अपनी मुक्ति से पहले मानवता की मुक्ति चाहते है।"

"सब ठीक है किन्तु आप उसी का अज्ञान मिटाइए जो अपना अज्ञान मिटाना चाहता है। मैं पहले ही कह चुका हूँ, राजनीति और धर्म-नीति मे बहुत बडा अन्तर है। मानता हूँ आप धर्म-नीति मे कुशल हैं किन्तु

राजनीति के छल-प्रपच के बारे में आप क्या जान सकती है ?"

"नमिराज ! तुम नही जानते न्याय, धर्मनीति और राजनीति के बीच की कड़ी है। जब तक राजनीति में धर्म-नीति का प्रवेश नही होता तब तक वह प्राणवान् नही हो सकती। राजा का काम धर्म से प्रजा की रक्षा करना है, अधर्म से उसका विनाश करना नही। इसलिए यदि राजनीति को तुम केवल छल-प्रपच और धोखा मान लो तो वह प्राणहीन हो जायेगी। तुम्हे नही मालूम कि राजनीति के जितने दाँव-पेच हैं, सबको जान लेने के बाद ही हमने धर्मनीति का सहारा लिया है। एक बार अच्छी तरह याद कर लो यदि तुमने अपना हठ नही छोडा तो चन्द्रयश की अपेक्षा तुम्हे अधिक हानि उठानी पडेगी। क्या तुम यही चाहते हो कि लाखो लोग बे-घरबार होकर भूख-प्यास से मारे-मारे फिरे और हजारों-लाखो निरपराध बालक और स्त्रियाँ अनाथ और विधवा होकर इतने हरे-भरे राज्य को श्मशान बना दें। इसलिए मेरी बात मानकर अपने अज्ञान का अन्त करो। इसी में तुम्हारा और प्रजा का हित है।"

"सतीजी, आप क्या कहना चाहती है। आपकी बात बहुत संक्षेप मे सुनना चाहता हूँ। युद्ध के लिए सैनिक उत्तेजित हो रहे हैं। इस समय उन्हे किसी प्रकार रोकना कठिन है।"

"राजन् ! मैं तुमसे पूछना चाहती हूँ कि तुम्हे एक हाथी प्यारा है या बहुत समय से बिछुड़ा हुआ अपना सहोदर भाई ?"

नमिराज का गला भर आया। उसने कहा—"सतीजी ! आप क्या कह रही है ? मेरा तो कोई भाई नही है। यदि भाई होता तो एक हाथी तो क्या अपना सारा राजपाट और प्राण तक भी दे देता। इस नश्वर ससार मे सहोदर भाई से बढकर भी कोई वस्तु है ? स्वर्ग का राज्य भी नही। चन्द्रयश मेरा भाई कैसे हो सकता है ?"

"यह बात केवल तुम्हारी माँ जानती है नमिराज !"

"महारानी पुष्पमाला ? नही, उन्होने कभी नही कहा कि मेरा कोई भाई भी है। वे तो यही कहती रहती है कि मैं महाराज पद्मरथ और रानी पुष्पमाला की आँखो का एक ही तारा हूँ।"

"सच्चाई कुछ और है नमिराज ! जिस सती सुव्रता को तुम अपनी आँखो से देख रहे हो वह कभी तुम्हारी माँ मदनरेखा थी। भाग्य की मारी तुम्हारी मजबूर और दु खियारी माँ तुम्हे जन्म देते ही एक झोली मे बाँधकर वन मे लटका आई। जिस मतवाले हाथी के लिए तुम युद्ध कर रहे हो वैसे ही एक हाथी की चपेट मे आकर मुझे मणिप्रभ की कुदृष्टि का सामना करना पडा। तुम भी अलग हो गये। तुम्हारा बड़ा भाई चन्द्रयश सुदर्शनपुर का

राजा हो गया और मैंने महासती सुदर्शना के पास आकर जैन-धर्म में दीक्षा ले ली। इतने दिनो के बाद आज तुम्हें अपनी आँखो से देख रही हूँ। सयम ले लेने के कारण तुम्हे अपने हृदय से नही लगा सकती, किन्तु तुम्हारे कल्याण के लिए मेरा हृदय उमड़ रहा है। पद्मरथ और पुष्पमाला ने तुम्हे अपने पुत्र की भाँति ही पाला है। इसलिए तुम उनके ही पुत्र रहो। तुम्हारी जननी माँ ने तो दूसरी दिशा मे अपना जीवन मोड़ लिया। अपने बड़े भाई का अहित मत करो नमिराज ! तुम्हे यह जानकर प्रसन्नता होगी कि तुम्हारे पिता को देव-भव मिला है और पृथ्वी पर आकर उन्होने ही मुझे दीक्षा दिलवाई। मैं उन्ही से आज्ञा लेकर तुम्हारे पास आई हूँ।"

"आपने सत्य-व्रत धारण किया है इसलिए किसी प्रकार के असत्य की आशा आपसे नही की जा सकती किन्तु आपके केवल कह देने से चन्द्रयश को अपना भाई और आपको अपनी माता कैसे मान लूं ? आप भली-भाँति जानती है कि पुत्र की रक्षा और लालन-पालन करने के कारण ही जन्म देने वाली स्त्री को माँ कहा जाता है किन्तु आप पर जब सकट आया तो अपने प्राणो के मोह मे पड़कर मेरा परित्याग कर दिया, ऐसी हालत में मैं आपका पुत्र कैसे हो सकता हूँ। रानी पुष्पमाला और पद्मरथ ने जन्म से ही मेरा पालन-पोषण किया है इसलिए उनको कैसे छोड़ सकता हूँ ?"

"नमिराज ! स्त्रियों का जीवन कैसा होता है यह स्त्री ही जानती है। मैंने तुम्हे छोडा नही था, प्रसव के बाद शरीर की शुद्धि के लिए स्नान करने गई थी। मैं तुम्हारे लिए मुनिराज के यहाँ भी व्याकुल थी किन्तु उनके द्वारा यह जानकर कि तुम्हे माँ और बाप मिल गये, मैंने अपना बोझ हल्का समझ लिया और संयम में प्रव्रजित हो गई। तुम माँ के हृदय को नहीं जानते नमिराज ! वह जीने-जी अपने पुत्र को नही छोड सकती। जो माँ नौ महीने तक अपने गर्भ मे रखकर असह्य वेदना सहकर पुत्र को जन्म देती है, वह इतनी जल्दी उसे कैसे छोड देगी ? माँ का हृदय ऐसा नही हो सकता नमिराज ! मैं कभी भी यह नही कह सकती कि तुम महारानी पुष्पमाला और महाराजा पद्मरथ को अपना माता-पिता मत मानो। मेरा तो केवल इतना ही कहना है कि अपने बडे सहोदर भाई चन्द्रयश के साथ युद्ध मत करो। यदि भूल से उमसे कोई अपराध भी हो गया हो तो उसे उदारतापूर्वक तुम्हे क्षमा कर देना चाहिए।"

नमिराज असमंजस मे पड गया। उसकी इस स्थिति को समझकर सती सुव्रता ने कहा—"नमिराज ! लगता है तुम दुविधा मे पड गये हो। तुम तो जन्म लेते ही मुझसे दूर हो गये थे इसलिए मुझे पहचान नही सकते। किन्तु तुम्हारा बडा भाई चन्द्रयश उस समय सयाना था जब तुम्हारे पिता की हत्या हुई और मैं सब कुछ छोड़कर

जंगल मे भाग गई थी। मैं उसके पास भी जाकर वताती हूँ कि नमिराज तुम्हारा छोटा भाई है। भ्रातृ-प्रेम से व्याकुल होकर वह अवश्य आकर तुम्हे गले से लगा लेगा। इस प्रकार तुम्हे विश्वास हो जायगा कि चन्द्रयश तुम्हारा बडा भाई है। किन्तु मैं चन्द्रयश के यहाँ जाने से पहले तुमसे प्रतिज्ञा कराना चाहती हूँ कि जब तक चन्द्रयश तुम्हारे पास न आ जाय तुम अपने मन मे किसी प्रकार की दुर्भावना नही लाओगे और अपने उस कर्तव्य का पालन करोगे जो वड़े भाई के लिए छोटे भाई का होता है। वोलो, क्या तुम मुझे ऐसा ही करने का विश्वास दिला सकते हो ?"

"मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उसके आने तक मैं बिना किसी दुर्भावना के बड़े भाई के आगमन की प्रतीक्षा करूँगा। वह घड़ी धन्य होगी जब वडे भाई के चरणो में पडकर मैं अपने अपराधों के लिए क्षमा माँग लूँगा और अपना जीवन उनकी सेवा मे अर्पित करूँगा। आप धन्य हैं। आपने मुझे अज्ञान की खन्दक में गिरने से बचा लिया। यदि आपका आगमन नही हुआ होता तो जहाँ आपके उपदेशो से मुझे शान्ति और सुख मिल रहा है, वहाँ महाविनाश देखकर पश्चात्ताप होता। आप शीघ्र जाकर वड़े भाई को दर्शन देकर उन्हे कृतार्थ करे। आपके दर्शन के लिए उनका हृदय व्याकुल होगा। आपको देखकर उनको शान्ति मिलेगी और अपने सहोदर

भाई से मिलने का समाचार पाकर वे गद्‌गद हो जायगे ।"

नमिराज से वचन लेकर सती सुव्रता सुदर्शनपुर के मुख्य द्वार पर पहुँची । प्रहरी ने कहा—"द्वार इस समय नही खुल सकता । शत्रु ने आक्रमण कर दिया है । यदि ऐसा न होता तो आप जैसी सतियो को आने से रोका नही जाता ।"

"वीरसिंह ! मैं कर्तव्य की कठिनता को जानती हूँ किन्तु ....।"

'आप मेरा नाम कैसे जान गई ? कही आप शत्रु की गुप्तचर तो नही ? हो सकता है नमिराज ने आपको पहले भेज दिया और जब दरवाजा खुल जाय उसके सैनिक नगर मे प्रवेश कर उत्पात मचाये ।"

"वीरसिंह ! मैं राजा चन्द्रयश की माता हूँ। तुम जाकर चन्द्रयश से कहो । उससे जाकर कहना कि नमिराज तुम्हारा छोटा भाई है। उससे किसी प्रकार का भय करना निरर्थक है । अज्ञानवश उसने तुम्हारे ऊपर चढाई कर दी । जब तक तुम जाकर उससे मिलते नही, उसके सैनिक एक कदम भी नही बढा सकते । अब वह चन्द्रयश से युद्ध करना नही चाहता । अपने बडे भाई से मिलने को व्याकुल है ।"

आश्चर्य मे डूबा द्वारपाल राजा चन्द्रयश को यह शुभ सूचना देने दौड पडा ।

: तीस :

वीरसिंह ने चन्द्रयश के समक्ष उपस्थित हो सूचना दी—"महाराज की जय हो ! एक शुभ सूचना लेकर उपस्थित हुआ हूँ।"

"वीरसिंह ! क्या समाचार है ? क्या नमिराज ने अधीनता स्वीकार कर ली ?"

"अधीनता नही महाराज, मित्रता ! सहोदर का प्रेम ! महाराज, आप जिस माताजी की खोज में इतने व्याकुल थे वे साध्वी-वेश मे आई हैं। उन्ही के द्वारा ज्ञात हुआ है कि महाराजा नमिराज आपके छोटे भाई हैं। वे नगर के वाहर विराजमान हैं। आपकी क्या आज्ञा है ?"

यह शुभ सूचना प्राप्त कर चन्द्रयश को ऐसा प्रतीत हुआ मानो निखिल भुवन की समस्त निधियाँ उसे प्राप्त हो गईं। उसने कहा—"वीरसिंह ! तुमने बहुत ही सुखद समाचार सुनाया। द्वार खोलकर उन्हे ले आओ। मैं भी भी स्वागत के लिए आ रहा हूँ।"

राजा चन्द्रयश की आज्ञा पाकर वीरसिंह सती सुव्रताजी को लेकर राजमहल की ओर आया और

सुव्रताजी से प्रार्थना की—"आप क्षण भर विश्राम करें, महाराज आ रहे हैं।"

वर्षों से बिछुडी अपनी माताजी के दर्शन होते ही चन्द्रयश की आँखो मे आंसू भर आये। रुँधे कण्ठ से वे कहने लगे—"माँ, माँ, मैंने आपकी बहुत खोज कराई किन्तु कही पता नही चला। आज का दिन परम सौभाग्य का दिन है कि आपने अनायास ही दर्शन दिये और वह भी ऐसे समय मे जब हमारे ऊपर सकट के वादल छा रहे थे। आज मुझे वह दु खद समय याद आ रहा है जब ज्येष्ठ पिता और पिताजी की मृत्यु के समय मुझे बिलखता छोड़कर आप अलग हो गई थी। समझ मे नही आता, आपने मुझे क्यो भुला दिया था ? मैं जानना चाहता हूँ कि आपने इतने दिन कैसे बिताये और सयम क्यो ले लिया ?"

"वह सब ज्ञात हो जायगा चन्द्रयश ! तुम धीरज से काम लो और अपने छोटे भाई नमिराज से जाकर मिलो। मैं जिस बालक को अपने गर्भ मे लेकर तुमसे अलग हो गई थी वही बालक आज मिथिला का राजा नमिराज है। इससे पहले उसे नही मालूम था कि तुम उसके बड़े भाई हो। मैंने उसको सारा वृत्तान्त वता दिया है। देर मत करो। वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।"

"धन्य है आप ! यदि मुझे पहले ज्ञात होता कि नमिराज मेरा छोटा भाई है तो एक छोटी सी वस्तु के

लिए मैं कभी युद्ध नही करता। वलिक उससे मिलकर अपने जीवन को धन्य वनाता।"

इधर चन्द्रयश की माता का आगमन सुनकर नगर के वहुत-से नर-नारी भी वहाँ आ पहुँचे। सभी ने सती सुव्रताजी को वन्दन-नमस्कार किया और उनके सुख-शान्ति पूछने लगे। चन्द्रयश नमिराज से मिलने के लिए उद्यत हो गया।

संसार मे जितने भी स्नेह हैं उनमे बन्धु-स्नेह सबसे वढकर है। दूसरे स्नेहियो का मिलना उतना कठिन नही है जितना सहोदर भाइयो का। सती सुव्रताजी के ठहरने आदि का प्रवन्ध कर चन्द्रयश नमिराज के पास चला। उसके हृदय मे हर्ष का सागर उमड रहा था। सुदर्शनपुर की प्रजा भी युद्ध समाप्त होने और नमिराज तथा चन्द्रयश मे भ्रातृ-सम्वन्ध मालूम होने के कारण वहुत प्रसन्न थी। चन्द्रयश के साथ राज-परिवार एव नगर के अन्य प्रतिष्ठित लोग भी नमिराज के स्वागत के लिए स्वागत सामग्री लेकर चल रहे थे।

सहसा नमिराज ने देखा कि सुदर्शनपुर का द्वार खुल रहा है और उसमें से असंख्य लोग उतावले होकर वाहर निकल रहे हैं। कुछ समय के पश्चात् समाचार मिला कि राजा चन्द्रयश मिलने के लिए आ रहे हैं। इस सुखद समाचार से नमिराज को अत्यधिक प्रसन्नता हुई और वह

अपने सामन्तो को साथ लेकर चन्द्रयश की अगवानी के लिए चला ।

दोनो सहोदर भाई मिल गये । नमिराज बड़े भाई चन्द्रयश के चरणो मे गिर पड़ा । चन्द्रयश ने उसे उठाकर अपनी छाती से लगाया और दोनो भ्रातृ-स्नेह पाकर गद्गद हो गये, नेत्रो से प्रेम के अश्रु छलक पडे । दोनों ने एक-दूसरे से क्षमा याचना की । दोनो का मिलन देखकर सुदर्शनपुर की जनता जय-जयकार करने लगी और आकाश से देवता फूल बरसाने लगे । नमिराज ने अपने नेत्र पोछते हुए कहा—"भाई अज्ञानदशा मे मैंने न जाने आपके बारे मे क्या-क्या कटु शब्द कहे । आप मुझे छोटा मानकर क्षमा कर दीजिए । यह मेरा बहुत बडा अपराध है । मुझे नही मालूम था कि आपकी शिराओ मे भी उन्ही पूर्वजो का रक्त बह रहा है जो मुझमे है ।"

"मेरे भाई नमिराज ! तुम अपराधी नही । अपराध तो मेरा है । यदि मैंने तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया होता तो यह दिन क्यो आता कि एक भाई दूसरे भाई के साथ युद्ध के लिए तैयार हो जाय । मैंने तुम्हारा हाथी लौटाने के स्थान पर तुम्हें कटु एव अपमानजनक शब्द कहे । मेरा अपराध क्षमा कर दो भाई । अब एक हाथी तो क्या सारा राज्य तुम्हारा है ।"

"भाई आप कितने उदार है । अच्छा यह बताइए कि माताजी के वियोग मे आपके दिन कैसे बीते ?"

"नमिराज ! एक तरफ पिता का वियोग, दूसरी तरफ ज्येष्ठ पिता और सगर्भा माँ का वियोग तथा समस्त राज्य का भार। आज तक मेरे ऊपर दुःखों की वर्षा ही होती रही है। भाई ! आज तुम्हें पाकर मैं अपने समस्त दुःखो को भूल गया हूँ। मैं कितना भाग्यवान हूँ नमिराज ! आओ, एक वार फिर तुम्हे गले लगा लूँ।"

दोनों भाइयो का मिलन सचमुच राम-भरत के मिलन की मधुर स्मृति दिला रहा था। उन्हें देखकर उनके असंख्य सैनिक भी, जो कुछ समय पूर्व तक एक-दूसरे के खून के प्यासे थे, अपने-अपने शस्त्र फेककर, बाँहे फैलाकर एक-दूसरे से लिपट गये।

निराशा और दुःख के स्थान पर आनन्द और उल्लास का, द्वेष और क्लेश के स्थान पर प्रेम और शान्ति का अभिसंचार हो गया। "महाराज चन्द्रयश की जय ! महाराज नमिराज की जय !! सती सुव्रता की जय !!!" के महाघोष से गगन-मण्डल गूंज उठा।



हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन